अनुक्रमणिका

१	प्रकाशकीय	पृ १ से ८
२.	प्रस्तावना	पृ १ से १६
३	सिढायच दयालदास और उनकी रचनाएं	पृ १ से १३
४	पवार वंश दर्पण	पृ १ से २१
५	ख्यात पवारां री विगत	२२
६	परिशिष्ट (१) बीकानेर राज्य के ठिकाने (साप पंवार)	२८
७.	परिशिष्ट (१) (क) मालवे के परमारों की उदयपुर प्रशस्ति	३६
८	परिशिष्ट (२) जगदेव पवार की बात	४०
९.	परिशिष्ट (३) परमारां री उत्पत्ति	४८
१०	परिशिष्ट (४) राजा भोज	५८
११	परिशिष्ट (५) विविध-वीर जगदेव परमार	७३

प्रकाशकीय

श्री सादूल राजस्थानी रिसर्च-इन्स्टीट्यूट बीकानेर की स्थापना सन् १९४४ में बीकानेर राज्य के तत्कालीन प्रधान मन्त्री श्री के. एम० पणिक्कर महोदय की प्रेरणा से साहित्यानुरागी बीकानेर-नरेश स्वर्गीय महाराजा श्री सादूलसिंहजी बहादुर द्वारा संस्कृत, हिन्दी एवं विशेषतः राजस्थानी साहित्य की सेवा तथा राजस्थानी भाषा के सर्वांगीण विकास के लिये की गई थी।

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध विद्वानों एवं भाषाशास्त्रियों का सहयोग प्राप्त करने का सौभाग्य हमें प्रारम्भ से ही मिलता रहा है।

संस्था द्वारा विगत १६ वर्षों से बीकानेर में विभिन्न साहित्यिक प्रवृत्तियां चलाई जा रही हैं जिनमें से निम्न प्रमुख हैं—

१. विशाल राजस्थानी हिन्दी शब्दकोश

इस सम्बन्ध में विभिन्न स्रोतों से संस्था लगभग दो लाख से अधिक शब्दों का संकलन कर चुकी है। इसका सम्पादन आधुनिक कोशों के ढंग पर, लंबे समय से प्रारम्भ कर दिया गया है और अब तक लगभग तीस हजार शब्द सम्पादित हो चुके हैं। कोश में शब्द, व्याकरण, व्युत्पत्ति, उसके अर्थ और उदाहरण आदि अनेक महत्वपूर्ण सूचनाएं दी गई हैं। यह एक अत्यन्त विशाल योजना है, जिसकी सन्तोषजनक क्रियान्विति के लिये प्रचुर द्रव्य और श्रम की आवश्यकता है। आशा है राजस्थान सरकार की ओर से प्रार्थित द्रव्य-साहाय्य उपलब्ध होते ही निकट भविष्य में इसका प्रकाशन प्रारम्भ करना सम्भव हो सकेगा।

२. विशाल राजस्थानी मुहावरा कोश

राजस्थानी भाषा अपने विशाल शब्द भंडार के साथ मुहावरों से भी समृद्ध है। अनुमानतः पचास हजार से भी अधिक मुहावरे दैनिक प्रयोग में लाये जाते हैं। हमने लगभग दस हजार मुहावरों का हिन्दी में अर्थ और राजस्थानी में उदाहरणों सहित प्रयोग देकर सम्पादन करवा लिया है और शीघ्र ही इसे प्रकाशित करने का प्रबन्ध किया जा रहा है। यह भी प्रचुर द्रव्य और श्रम-साध्य कार्य है।

यदि हम यह विशाल संग्रह साहित्य जगत को दे सके तो यह संस्था के लिये ही नहीं किन्तु राजस्थानी और हिन्दी जगत के लिये भी एक गौरव की बात होगी।

३ आधुनिक राजस्थानी रचनाओं का प्रकाशन

इसके अन्तर्गत निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं—

१ कळायण, ऋतु काव्य। ले. श्री नानूराम संस्कर्ता।

२. आभै पटकी, प्रथम सामाजिक उपन्यास। ले. श्री श्रीलाल जोशी।

३ वरस गांठ, मौलिक कहानी संग्रह। ले. श्री मुरलीधर व्यास।

'राजस्थान-भारती' में भी आधुनिक राजस्थानी रचनाओं का एक अलग स्तम्भ है, जिसमें भी राजस्थानी कवितायें, कहानियां और रेखाचित्र आदि छपते रहते हैं।

४ राजस्थान-भारती का प्रकाशन

इस विख्यात शोधपत्रिका का प्रकाशन संस्था के लिये गौरव की वस्तु है। गत १४ वर्षों से प्रकाशित इस पत्रिका की विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। बहुत चाहते हुए भी द्रव्याभाव, प्रेस की एवं अन्य कठिनाइयों के कारण, त्रैमासिक रूप से इसका प्रकाशन सम्भव नहीं हो सका है। इसका भाग ५ अंक ३-४ 'डा. लुइजि पिओ तैस्सितोरी विशेषांक' बहुत ही महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री से परिपूर्ण है। यह अंक एक विदेशी विद्वान की राजस्थानी साहित्य सेवा का एक बहुमूल्य सचित्र कोश है। पत्रिका का अगला ७वां भाग शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है। इसका अंक १-२ राजस्थानी के सर्वश्रेष्ठ महाकवि पृथ्वीराज राठोड़ का सचित्र और बृहत् विशेषांक है। अपने ढंग का यह एक ही प्रयत्न है।

पत्रिका की उपयोगिता और महत्व के संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसके परिवर्तन में भारत एवं विदेशों से लगभग ८ पत्र-पत्रिकाएं हमें प्राप्त होती हैं। भारत के अतिरिक्त पाश्चात्य देशों में भी इसकी मांग है व इसके ग्राहक हैं। शोधकर्त्ताओं के लिये 'राजस्थान-भारती' अनिवार्यतः संग्रहणीय शोध पत्रिका है। इसमें राजस्थानी भाषा, साहित्य, पुरातत्त्व, इतिहास, कला आदि पर लेखों के अतिरिक्त संस्था के तीन विशिष्ट सदस्य डा. दशरथ शर्मा, श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री अगरचंद नाहटा की बृहत् लेख सूची भी प्रकाशित की गई है।

५. राजस्थानी साहित्य के प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुसंधान सम्पादन एवं प्रकाशन

हमारी साहित्य-निधि को प्राचीन महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ साहित्यिक कृतियों को सुरक्षित रखने एवं सर्वसुलभ कराने के लिये सुसम्पादित एवं शुद्ध रूप मे मुद्रित करवा कर उचित मूल्य में वितरित करने की हमारी एक विशाल योजना है। संस्कृत हिंदी और राजस्थानी के महत्वपूर्ण ग्रन्थों का अनुसंधान और प्रकाशन संस्था के सदस्यों की ओर से निरंतर होता रहा है, जिसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

६ पृथ्वीराज रासो

पृथ्वीराज रासो के कई संस्करण प्रकाश मे लाये गये है और उनमे से लघुतम संस्करण का सम्पादन करवा कर उसका कुछ अंश 'राजस्थान-भारती' मे प्रकाशित किया गया है। रासो के विविध संस्करण और उसके ऐतिहासिक महत्व पर कई लेख राजस्थान-भारती मे प्रकाशित हुए है।

७ राजस्थान के अज्ञात कवि जान (न्यामतखा) की ७५ रचनाओं की खोज की गई। जिसकी सर्वप्रथम जानकारी 'राजस्थान-भारती' के प्रथम अंक मे प्रकाशित हुई है। उसका महत्वपूर्ण ऐतिहासिक 'काव्य क्यामरासा' तो प्रकाशित भी करवाया जा चुका है।

८. राजस्थान के जैन संस्कृत साहित्य का परिचय नामक एक निबंध राजस्थान-भारती मे प्रकाशित किया जा चुका है।

९. मारवाड़ क्षेत्र के ५ लोकगीतों का संग्रह किया जा चुका है। बीकानेर एवं जैसलमेर क्षेत्र के सैकड़ों लोकगीत घूमर के लोकगीत बाल लोकगीत लोरियाँ और लगभग ७ लोक कथाएं संग्रहीत की गई है। राजस्थानी कहावतों के दो भाग प्रकाशित किये जा चुके है। जीणमाता के गीत पाबूजी के पवाड़े और राजा भरथरी आदि लोक काव्य सर्वप्रथम 'राजस्थान-भारती' मे प्रकाशित किए गए है।

१ बीकानेर राज्य के और जैसलमेर के अप्रकाशित अभिलेखों का विशाल संग्रह 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक वृहत् पुस्तक के रूप मे प्रकाशित हो चुका है।

११ दलपत विलास, मुंहता नैणसी री ख्यात और अनोखी आन जैसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थों का सम्पादन एवं प्रकाशन हो चुका है।

१२. जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी के सचिव कविवर उदयचन्द भंडारी की ४ रचनाओं का अनुसन्धान किया गया है और महाराजा मानसिंहजी की काव्य-साधना के सम्बन्ध में भी सबसे प्रथम 'राजस्थान भारती' में लेख प्रकाशित हुआ है।

१३ जैसलमेर के अप्रकाशित १ शिलालेखों और 'भट्टि वंश प्रशस्ति' आदि अनेक अप्राप्य और अप्रकाशित ग्रन्थ खोज-यात्रा करके प्राप्त किये गये हैं।

१४ बीकानेर के मस्तयोगी कवि ज्ञानसारजी के ग्रन्थों का अनुसन्धान किया गया और ज्ञानसार ग्रन्थावली के नाम से एक ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुका है। इसी प्रकार राजस्थान के महान विद्वान महोपाध्याय समयसुन्दर की ५६१ लघु रचनाओं का संग्रह प्रकाशित किया गया है।

१५ इसके अतिरिक्त संस्था द्वारा—

(१) डा० लुइजि पिओ टैस्सितोरी, समयसुन्दर, पृथ्वीराज और लोकमान्य तिलक आदि साहित्य-सेवियों के निर्वाण-दिवस और जयन्तियां मनाई जाती हैं।

(२) साप्ताहिक साहित्य गोष्ठियों का आयोजन बहुत समय से किया जा रहा है, इसमें अनेकों महत्वपूर्ण निबन्ध, लेख, कविताएं और कहानियां आदि पढ़ी जाती हैं, जिससे अनेक विध नवीन साहित्य का निर्माण होता रहता है। विचार विमर्श के लिये गोष्ठियों तथा भाषणमालाओं आदि के भी समय-समय पर आयोजन किये जाते रहे हैं।

१६ बाहर से ख्याति प्राप्त विद्वानों को बुलाकर उनके भाषण करवाने का आयोजन भी किया जाता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, डा० कैलाशनाथ काटजू, राय श्रीकृष्णदास, डा० जी० रामचन्द्रन्, डा० सत्यप्रकाश, डा० डब्लू. एलेन, डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० तिबेरियो-तिबेरी आदि अनेक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विद्वानों के इस कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषण हो चुके हैं।

गत दो वर्षों से महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ आसन की स्थापना की गई है। दोनों वर्षों के आसन-अधिवेशनों के अभिभाषक क्रमशः राजस्थानी भाषा के प्रकाण्ड

विद्वान् श्री मनोहर शर्मा एम. ए., बिसाऊ और पं. श्रीलालजी मिश्र एम. ए., हूंडलोद थे।

इस प्रकार संस्था अपने १६ वर्षों के जीवनकाल में संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी साहित्य की निरन्तर सेवा करती रही है। आर्थिक संकट से ग्रस्त इस संस्था के लिये यह सम्भव नहीं हो सका कि यह अपने कार्यक्रम को नियमित रूप से पूरा कर सकती, फिर भी यथा कथा लड़खड़ा कर गिरते पड़ते इसके कार्यकर्ताओं ने 'राजस्थान-भारती' का सम्पादन एवं प्रकाशन जारी रखा और यह प्रयास किया कि नाना प्रकार की बाधाओं के बावजूद भी साहित्य सेवा का कार्य निरंतर चलता रहे। यह ठीक है कि संस्था के पास अपना निजी भवन नहीं है, न अच्छा संदर्भ पुस्तकालय है, और न कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करने के समुचित साधन ही हैं, परन्तु साधनों के अभाव में भी संस्था के कार्यकर्त्ताओं ने साहित्य की जो मौन और एकान्त साधना की है वह प्रकाश में आने पर संस्था के गौरव को निश्चय ही बढ़ा सकने वाली होगी।

राजस्थानी-साहित्य-भंडार अत्यन्त विशाल है। अब तक इसका अत्यल्प अंश ही प्रकाश में आया है। प्राचीन भारतीय वाङ्मय के अलभ्य एवं अनर्घ रत्नों को प्रकाशित करके विद्वज्जनों और साहित्यिकों के समक्ष प्रस्तुत करना एवं उन्हें सुगमता से प्राप्त कराना संस्था का लक्ष्य रहा है। हम अपनी इस लक्ष्य पूर्ति की ओर धीरे-धीरे किन्तु दृढ़ता के साथ अग्रसर हो रहे हैं।

यद्यपि अब तक पत्रिका तथा कतिपय पुस्तकों के अतिरिक्त अन्वेषण द्वारा प्राप्त अन्य महत्वपूर्ण सामग्री का प्रकाशन करा देना भी अभीष्ट था, परन्तु अर्थाभाव के कारण ऐसा किया जाना सम्भव नहीं हो सका। हर्ष की बात है कि भारत सरकार के वैज्ञानिक संशोध एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम मन्त्रालय (Ministry of scientific Research and Cultural Affairs) ने अपनी आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास की योजना के अंतर्गत हमारे कार्यक्रम को स्वीकृत कर प्रकाशन के लिये १५) रु० इस मद में राजस्थान सरकार को दिये तथा राजस्थान सरकार द्वारा उतनी ही राशि अपनी ओर से मिलाकर कुल ३) तीस हजार की सहायता राजस्थानी साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन

हेतु इस संस्था को इस वित्तीय वर्ष में प्रदान की गई है, जिससे इस वर्ष निम्नोक्त ११ पुस्तकों का प्रकाशन किया जा रहा है।

१ राजस्थानी व्याकरण—	श्री नरोत्तमदास स्वामी
२ राजस्थानी गद्य का विकास (शोध प्रबंध)	डा. शिवस्वरूप शर्मा अचल
३ अचलदास खीची री वचनिका—	श्री नरोत्तमदास स्वामी
४ हमीरायण—	श्री भंवरलाल नाहटा
५ पदमिनी चरित्र चौपई—	"
६ दलपत विलास—	श्री रावत सारस्वत
७. डिंगल गीत—	"
८ पंवार वंश दर्पण—	डा. दशरथ शर्मा
९ पृथ्वीराज राठोड़ ग्रंथावली—	श्री नरोत्तमदास स्वामी और श्री बदरीप्रसाद साकरिया
१ हरिरस—	श्री बदरीप्रसाद साकरिया
११ पीरदान लालस ग्रंथावली—	श्री अगरचंद नाहटा
१२ महादेव पार्वती वेलि—	श्री रावत सारस्वत
१३ सीताराम चौपई—	श्री अगरचंद नाहटा
१४ जैन रासादि संग्रह—	श्री अगरचंद नाहटा और डा. हरिवल्लभ भायाणी
१५ सदयवत्स वीर प्रबंध—	प्रो. मंजुलाल मजूमदार
१६ जिनराजसूरि कृतिकुसुमांजलि—	श्री भंवरलाल नाहटा
१७ विनयचंद कृतिकुसुमांजलि—	
१८ कविवर धर्मवर्द्धन ग्रंथावली—	श्री अगरचंद नाहटा
१९ राजस्थान रा दूहा—	श्री नरोत्तमदास स्वामी
२ वीर रस रा दूहा—	
२१ राजस्थान के नीति दोहे—	श्री मोहनलाल पुरोहित
२२ राजस्थानी व्रत कथाएं—	
२३ राजस्थानी प्रेम कथाएं—	
२४ चंदायन—	श्री रावत सारस्वत

२५. मुहता— श्री अगरचंद नाहटा और म० विनयसागर
२६ जिनहर्ष ग्रन्थावली — श्री अगरचंद नाहटा
२७ राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण — ,,
२८. दम्पति विनोद
२९ हीयाली—राजस्थान का बुद्धिवर्धक साहित्य — ,,
३० समयसुन्दर रासत्रय — श्री भंवरलाल नाहटा
३१ दुरसा आढ़ा ग्रन्थावली — श्री बदरीप्रसाद साकरिया

जैसलमेर ऐतिहासिक साधन संग्रह (सम्पा० डा० दशरथ शर्मा) ईशरदास ग्रन्थावली (सम्पा० बदरीप्रसाद साकरिया) रामरासो (प्रो० गोवर्द्धन शर्मा) राजस्थानी जैन साहित्य (ले० श्री अगरचन्द नाहटा) नागदमण (सम्पा० बदरीप्रसाद साकरिया) मुहावरा कोश (मुरलीधर व्यास) आदि ग्रंथों का सम्पादन हो चुका है परन्तु अर्थाभाव के कारण इनका प्रकाशन इस वर्ष नहीं हो रहा है।

हम आशा करते हैं कि कार्य की महत्ता एवं गुरुता को लक्ष्य में रखते हुए अगले वर्ष इससे भी अधिक सहायता हमें अवश्य प्राप्त हो सकेगी जिससे उपरोक्त सम्पादित तथा अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन सम्भव हो सकेगा।

इस सहायता के लिये हम भारत सरकार के शिक्षा विकास सचिवालय के आभारी हैं जिन्होंने कृपा करके हमारी योजना को स्वीकृत किया और ग्रान्ट-इन एड की रकम मंजूर की।

राजस्थान के मुख्य मंत्री माननीय मोहनलालजी सुखाड़िया जो सौभाग्य से शिक्षा मंत्री भी हैं और जो साहित्य की प्रगति एवं पुनरुद्धार के लिये पूर्ण सचेष्ट हैं, का भी इस सहायता के प्राप्त कराने में पूरा-पूरा योगदान रहा है। अतः हम उनके प्रति अपनी कृतज्ञता सादर प्रगट करते हैं।

राजस्थान के प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाध्यक्ष महोदय श्री जगन्नाथसिंहजी मेहता का भी हम आभार प्रगट करते हैं जिन्होंने अपनी ओर से पूरी-पूरी दिलचस्पी लेकर हमारा उत्साहवर्द्धन किया जिससे हम इस वृहद् कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ हो सके। संस्था उनकी सदैव ऋणी रहेगी।

इतने थोड़े समय में इतने महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संपादन करके संस्था के प्रकाशन-कार्य में जो सराहनीय सहयोग दिया है, इसके लिये हम सभी ग्रन्थ सम्पादकों व लेखकों के अत्यन्त आभारी हैं।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी और अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर, स्व. पूर्णचन्द्र नाहर संग्रहालय कलकत्ता, जैन भवन संग्रह कलकत्ता, महावीर तीर्थक्षेत्र अनुसंधान समिति जयपुर, ओरियंटल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा, भाण्डारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, खरतरगच्छ बृहद् ज्ञान भण्डार बीकानेर, एशियाटिक सोसाइटी बंबई, आत्माराम जैन ज्ञानभंडार बड़ोदा, मुनि पुण्यविजयजी, मुनि रमणिक विजयजी, श्री सीताराम लालस, श्री रविशंकर देराश्री, पं. हरिदत्तजी गोविंद व्यास जैसलमेर आदि अनेक संस्थाओं और व्यक्तियों से हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होने से ही उपरोक्त ग्रन्थों का संपादन सम्भव हो सका है। अतएव हम इन सबके प्रति आभार प्रदर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते हैं।

ऐसे प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन श्रमसाध्य है एवं पर्याप्त समय की अपेक्षा रखता है। हमने अल्प समय में ही इतने ग्रन्थ प्रकाशित करने का प्रयत्न किया इसलिये त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक है। गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः, हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति साधवः।

आशा है विद्वद्वृन्द हमारे इन प्रकाशनों का अवलोकन करके साहित्य का रसास्वादन करेंगे और अपने सुझावों द्वारा हमें लाभान्वित करेंगे जिससे हम अपने प्रयास को सफल मानकर कृतार्थ हो सकेंगे और पुनः मां भारती के चरण कमलों में विनम्रतापूर्वक अपनी पुष्पांजलि समर्पित करने के हेतु पुनः उपस्थित होने का साहस बटोर सकेंगे।

निवेदक
लालचन्द कोठारी
प्रधान-मन्त्री
सादूल राजस्थानी-इन्स्टीट्यूट
बीकानेर

बीकानेर
मार्गशीर्ष शुक्ला १५
संवत् २०१७
दिसम्बर ३, १९६०

प्रस्तावना

राजस्थान ही की नहीं प्राय: समस्त भारत की प्राचीन ऐतिह्य सामग्री बहुत कुछ दुर्लभ है। किन्तु मानव की स्वभावत: यह इच्छा होती है कि वह अपने पूर्वजों के विषय में कुछ न कुछ ज्ञान प्राप्त करे। यह ज्ञान सत्य पर आश्रित हो तो ठीक ही है, अन्यथा कल्पित सत्य से संतोष करने की वृत्ति भी मानव समाज में वर्तमान है विशेषत: उस समय के लिए जब उसे सत्य तक पहुँचने के साधन आसानी से प्राप्त न हो। भाटों और चारणों की अनेक वंशावलियाँ इसी मानवी वृत्ति को ध्यान में रख कर बनाई गई हैं। उनका कुछ अंश सर्वथा सत्य रहता है। इसका लेखक को समय सान्निध्य के कारण सम्यक् ज्ञान रहता है, और किसी अंश तक उसके श्रोताओं को भी। किन्तु इन वंशावलियों के प्रारम्भिक भाग में कल्पना इतने अधिक अंश में होती है कि उसके सत्यांश पर भी लोग अश्रद्धा करने लगते हैं। दयालदास सिंढायच का पंवार-वंश-दर्पण और पवारवंशावलि ऐसे ही चारणी सम्भ्रमों में है। पाठक इनके सत्यांश को ग्रहण कर असत्यांश की अवहेलना करेंगे—इसी आशा से ये ग्रन्थ प्रकाशित किए जा रहे हैं। "सारततो ग्राह्यमपास्य फल्गु"।

"पंवार-वंश-दर्पण' की रचना दोहों और कवित्तों में हुई है। इसका हिन्दी सारांश देने की विशेष आवश्यकता नहीं है क्योंकि पवारवंशावलि बहुत कुछ इन्हीं का भावानुवाद है। वंशावलीकार ने इसी को आधार मान कर अपनी वंशावली की रचना की है, और अन्त में कुछ ऐसे तथ्य जोड़ दिये हैं जो पवारवंशदर्पण में वर्तमान नहीं है। जगदेव का वर्णन 'दर्पण' में कुछ विशेष क्रम से है। अन्त के दो कवित्त भी ऐसे हैं जिन्हें किसी अंश में दर्पण की ही सम्पत्ति कहा जा सकता है।

प्रतीत होता है कि इन कवियों ने परमारों की उत्पत्ति के विषय में मुख्यतः पृथ्वीराजरासो का अनुसरण किया है जिसके अनुसार असुरों का संहार करने के लिये वशिष्ठ ने चार अग्निकुल उत्पन्न किये चालुक्य चौहान परमार और प्रतिहार। गोत्रादि शाखाएं स्वयं ही इन ग्रंथों में दिए हैं। इनके अनुसार अग्निकुण्ड से उत्पन्न परमार का गोत्र वत्स था और उसके पांच प्रवर थे। उसकी शाखा माध्यन्दिनी और कुलदेवी सच्चियाय माता थी। नैणसी ने भी परमारों के अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने की कथा दी है, किन्तु उसमें उनका गोत्र वशिष्ठ दिया है जो अधिक ठीक है। वत्स गोत्र वास्तव में चौहानों का है। परमारों के वशिष्ठ के अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने की कथा परमारों के प्राचीन से प्राचीन शिलालेखों और काव्यों में वर्तमान है। इसलिये हम किसी अन्य राजपूत जाति को अग्निवंशी मानें या न मानें परमारों को अग्निवंशी मानने में हमें विशेष सुविधा नहीं हो सकती। अग्निवंशी होना उतना ही सम्भव या असम्भव है जितना सूर्यवंशी या चन्द्रवंशी। यह भी सम्भव है कि परमार मूलतः वशिष्ठगोत्रीय अग्नि होत्री ब्राह्मणवर्ग के सम्पर्क में रहे हों और इसी कारण से परवर्तीकाल में उन्हें अग्निवंशी मान लिया गया हो। किन्तु यह धारणा भी कल्पना पर ही आश्रित है यह सत्य भी हो सकती है और असत्य भी[1]।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि ऐसे चारणी कवियों के अनेक नाम कल्पित रहते हैं। किन्तु इस कल्पना का भय और दुर्भाग्य हम सर्वथा ख्यातकार निरपराध तो नहीं दे सकते क्योंकि उनके समय से पूर्व ही कुछ ऐसी वंशावलियां प्रचलित हो चुकी थीं जिनमें अनेक नामों की कल्पना की जा चुकी थी। नैणसी ने ऐसी दो वंशावलियां दी हैं (भाग १ पृष्ठ २११-२१२) जिनमें पवारवंशदर्पण और वंशावली के कुछ नाम वर्तमान हैं। नैणसी ने लगभग ६४ नाम दिए हैं। ख्यातकार ने १११ पीढ़ियां दी हैं। वंशावली में

---

१ इस विषय में हमारा 'परमारों की उत्पत्ति' नाम का लेख देखें (राजस्थान भारती भाग ३ अङ्क २ पृ २-८ तथा इसी ग्रंथ में पृष्ठ ४८-५७ पर)

कुछ पीढ़ियाँ छिप हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि नैणसी और वयासवाय के बीच के समय में चारणों ने वंशावली को द्विगुणित करने की कृपा की थी।

वंशावली के आठवें राजा धौम्यराज को हम नैणसी का धूमराजपि और शिलालेखों का धूमराज मान सकते हैं। मधु सुरपति शायद अभिलेखों का उत्पेन्द्र हो। किन्तु उनसे पहले और पीछे के नाम प्राय कल्पित हैं। अभिलेखों के आधार पर मारवाड़ और आबू के परमारों की वंशावली हम निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं।[२]

धूमराज
|
१ सिंधुराज
|
२ उत्पलराज
|
३ अरण्यराज
|
४ कृष्णराज प्रथम (वि स १ २४)[३]
|
५ धरणीवराह
|
६ धूर्मट (ध्रुवभट) उपनाम महीपाल
|
७ धन्धुक
|
८ पूर्णपाल (वि.सं १ ६६ १२ २) ९ दन्तिवर्मा १ कृष्णदेव कृष्णराज (वि स १११७-२१)

२ यह वंशावली मुख्यतः डा. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा की शोध पर आधारित है। इसमें वे शोध का कुछ भाग वे अपने राजपूताने के इतिहास में न प्रयुक्त कर सके थे।

३ ओझा निबन्ध संग्रह द्वितीय भाग पृ २४३

९ दन्तिवर्मा
|
योगराज
|
रामदेव
|
१३ यशोधवल (वि सं १२ २-७)
|
१४ धारावर्ष (वि सं १२२ –७६)
|
१५ सोमसिंह (वि० सं० १२८७–९३)
|
१६ कृष्णराज तीसरा
|
१७ प्रतापसिंह (वि सं १३४४)
|
१८ विक्रमसिंह

१ कृष्णदेव दूसरा
|
११ काकलदेव
|
१२ विक्रमसिंह
|
रणसिंह

आबू के परमार राज्य की देवड़े चौहानों ने समाप्ति की[४]। 'धरणी' और "वराहसी' का ख्यातिप्राप्त राजा धरणीवराह अमर ही हुई कथाओं का पाचवा शासक है। एक प्राचीन छप्पय के अनुसार, जिसे दयालदास ने भी उद्धृत किया है और जिसका भावानुवाद 'परमार-वंशावलि' में विद्यमान है धरणीवराह ने 'नवकोटि मारवाड़' अपने नौ भाइयों में बांट दी थी। उसने मंडोर सामंतसिंह को, अजमेर अजयसिंह को पूगल गजमल को, लुद्रवा भाण को धाट योगराज को पारकर हंसू को पल्लू धरसिंह को अर्बुद पालणसिंह को जालोर भोज को और किराडू राजसी को दिया। किन्तु यह कोरी कल्पना है। अजमेर की स्थापना तो शाकम्भरीराज अजयसिंह ने बारहवीं शताब्दी में की थी। जब धरणीवराह का समय

४ देखें हमारा लेख 'चन्द्रावती एवं आबू के देवड़े चौहान' राजस्थान भारती भाग १ अंक ४

'दर्पण' और 'कथावली' ने विक्रमादित्य से भी पूर्व रखा है, तो वह अजमेर अपने भाई अजयसिंह को किस प्रकार दे सकता था ?

वास्तव में धरणीवराह का समय वि सं १ २४ से पूर्व नहीं रखा जा सकता। न सब राजस्थान ही उसके अधिकार में था कि वह उसे अपने भाइयों में बांट देता। हथूंडी के शिलालेख से तो प्रतीत होता है कि चौलुक्य राजा मूलराज ने जब उसे घर दबाया तो उसने हथूंडी के राठौड़ राजा धवल की शरण ली थी[५]। उसका साम्राज्य और प्रबलता दोनों ही कल्पित हैं।

इसके बाद कुछ ऐतिहासिक नाम अस्त-व्यस्त रूप में १७ वीं से १८ वीं पीढ़ी तक वर्तमान हैं। राजा सिंधुसेन को हम मालवे का प्रतापी राजा सीयक मान सकते हैं जिसका सं १ ५ का एक लेख हरसोल से मिला है और जिसने वि स १ २९ में दक्षिणी राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट को लूटा। राजा मुंज या वाक्पति द्वितीय इसका पुत्र था। यह महाकवि, महाविद्वान्, और महान् वीर था। इसके समय परमारों के राज्य का काफी और प्रसार हुआ। सन् ९९५ से ९९७ ई के बीच में यह कल्याण के चौलुक्य राजा तैलप द्वितीय के हाथों मारा गया[६]। सिन्धुसेन जिसे कथावली ने सम्भवतः मुंज का पुत्र माना है वास्तव में उसका छोटा भाई और उत्तराधिकारी था। दर्पण की कथावली में इन दोनों भाइयों के स्थान में दीसम्मज और पुननदेव के नाम हैं जो ठीक नहीं माने जा सकते।[७] सत्तावनवां राजा भोज सिन्धुराज का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। उसके राज्य का सब से पहला अभिलेख वि स १ ७६ (सन् १ १ ई) का है। उसकी वदान्यता और शौर्य दोनों ही जगत्प्रसिद्ध हैं।

---

५ एपिग्राफिया इंडिका जि १ पृ २१

६ देखें प्रबन्धचिन्तामणि

७ सिन्धुसेन का ठीक नाम सिन्धुराज है। उसकी उपाधि नवसाहसांक थी।

उसने कल्याण के चौलुक्या को हरा कर मुञ्ज की मृत्यु का बदला लिया और शाकम्भरी के चौहान राजा वीर्यराम को मारा। चित्तौड़ पर उसका अधिकार था। इन्द्ररथ तोग्गल भीम आदि अनेक पड़ोसी राजाओं को भी उसने हराया और उसके संरक्षित विद्वानों द्वारा रचित अनेक ग्रन्थों से संस्कृत साहित्य अलंकृत है। भोज की मृत्यु के समय उसके विरोधी गुजरात के राजा भीमदेव प्रथम और चेदिराज कर्ण ने धारा को घेर लिया था और स्थिति काफी खराब थी। प्रतीत होता है कि अन्त में चालुक्य भोज के राज्य ने भी पराजय पाया था।

इस वंश का उल्लेखनीय भोज का भाई उदयादित्य है जिसने भोज की मृत्यु के कुछ समय बाद मालवदेश को पुनः स्वतन्त्र किया। यह भी अच्छा विद्वान था। इसके बाद अनेक कल्पित नामों को लेकर 'वर्णसूत्र' और 'नागावली' में नरवर्मन का नाम लिया है जो अपने समय का अप्रतिम वीर था। तीन अभिलेखों में दयाचरण ने उसका गुणगान किया है। इनमें विशेष रूप से नरदेव के कल्याणी को अपने सिर का दान देने की कथा का वर्णन है। अस्तु हम सिद्ध कर चुके हैं कि नरदेव वास्तव में विजित वीर था। उसने जयसिंह सिद्धराज को दान में ही नहीं युद्ध में भी नीचा दिखाया था। कल्याण के प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य षष्ठ के दरबार में उसका पूर्ण सम्मान था और उसके जीवन का अन्तिम भाग विक्रमादित्य के सामन्त के रूप में मालव भूमि से अलग ही बीता। किन्तु यहां जगद्देव होता जहां साधक और विद्वान् भी निमित्तरूप से पहुँचते और उसकी उदारता और शौर्य की अनेक कथाओं से हमारा साहित्य सुरक्षित है।

मालवे में उदयादित्य के बाद वास्तव में लक्ष्मण वर्मा गद्दी पर बैठा और उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई नरवर्मा हुआ जिसके समय तक चित्तौड़ में परमारों का अधिकार था।[८]

---

८ देखें राजस्थान भारती भाग ४ अंक ४ पृ ४०-२१

अभिलेखों के आधार पर मालवे और वागड़ के परमारों की वंशावली निम्नलिखित है [१]
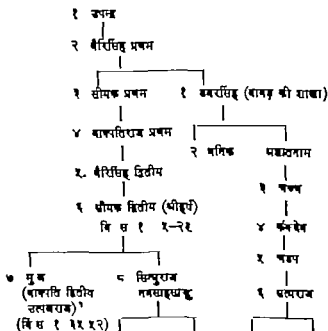
१ देखें युगप्रधानगुर्वावलि (सिंघी जैन ग्रन्थमाला) और इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली मे प्रकाशित हमारा लेख Gleanings from the Kharataragacchapattavali भाग २१ पृ २२१ २३१

१ मुख्यतः यह वंशावली ओझाजी के इतिहास पर आधारित है। किन्तु नवीन शोध के आधार पर कुछ तिथियां बदल दी गई है। इसके लिये कुमारी प्रतिपाल भाटिया का अभिनिबन्ध द्रष्टव्य है।

२० वर्मसिंह द्वितीय
जयतुगिदेव देवपाल
(वि स १२९२ १३१४)

२१ जयवर्मा जयसिंह[14]
वि स. १३१४–१३१७

अर्जुनवर्मा (दूसरा)   भोज दूसरा

जयसिंह चतुर्थ वि स १३६६
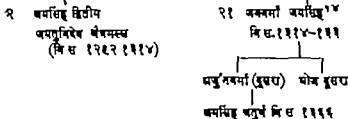
इस वंश के प्रारम्भिक राजाओं का तिथिक्रम अनिश्चित है। कई विद्वान् उपेन्द्र को राष्ट्रकूट इन्द्र तृतीय का समकालीन मानते हैं, जिसका समय सन् ९१५ से ९२७ ई है। किन्तु सीयक के समय (सन् ९४९–९७२) को ध्यान में रखते हुए उपेन्द्र को हमें सन् ८२५ से ८५० के लगभग रखना होगा। ऐसी अवस्था में उपेन्द्र को हम प्रतिहार सम्राट् भोज और राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम का समकालीन मान सकते हैं। परमारों के उत्पत्ति-स्थान आबू को और तत्कालीन परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए भी सम्भवतः यही मानना ठीक होगा कि मालवे के परमारों ने अपना राजनीतिक जीवन कन्नौज के प्रतिहारों के सामन्तों के रूप में ही शुरू किया था। उससे पूर्व के मालवे के राजाओं ने अनेकधा राष्ट्रकूटों का साथ देकर प्रतिहारों को हानि पहुँचाई थी। मालवे में उपेन्द्र के परमार वंश की स्थापना कर सम्भवतः मिहिरभोज ने इसी स्थिति को समाप्त करने का प्रयत्न किया। किसी अंश तक उसकी यह नीति सफल भी हुई और वाक्पति जैसे परमार राजाओं ने प्रतिहारों को बङ्गालादि तक पहुँचने में सहायता दी।[15] महेन्द्रपाल प्रतिहार के शिलालेख बिहार और बंगाल में मिले हैं। यह

---

१४ देखें प्रासीडिंग्स आव दी इण्डियन हिस्टारिकल कांग्रेस १९५७ में डा डी सी सरकार का अभिभाषण।

१५ देखें उदयपुर प्रशस्ति और जर्नल आफ इण्डियन हिस्ट्री १९६ में हमारा महेन्द्रपाल और महीपाल पर लेख।

वाक्पति का समसामयिक था और सामन्तीय दृष्टि से उसका स्वामी भी रहा होगा ।

महेन्द्रपाल के बाद प्रतिहार साम्राज्य की स्थिति बदली । राष्ट्रकूटों के एक के बाद एक अनेक आक्रमण भी प्रतिहार साम्राज्य पर हुए । सम्भव वाक्पति के उत्तराधिकारी वज्रट स्वामी ने उनकी सहायता से सर्वथा स्वतन्त्र होने का प्रयत्न भी किया हो ।[16] किन्तु सोमदेव के आहड़ा अभिलेख से प्रतीत होता है कि उसे इस प्रयत्न में विशेष सफलता मिली और परमारों ने कुछ समय के लिये मालवा छोड़ कर लाट के आस-पास राष्ट्रकूटों के अधीनस्थ होकर किसी अधीनस्थ राज्य की स्थापना की ।[17] सीयक द्वितीय ने कृष्ण तृतीय को दक्षिण में भगा देख कर सम्भवतः धीरे धीरे अपनी शक्ति की वृद्धि की हो । जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं सन् ९७२ (वि सं १०२९) में उसने मान्यखेट को लूटा । उसके उत्तराधिकारियों में से सिन्धुराज भोज उदयादित्य लक्ष्मदेव और नरवर्मा के विषय में हम ऊपर संक्षेप में लिख चुके हैं । यह वर्णन अपर्याप्त होते हुए भी उस समय का कुछ दिग्दर्शन कराता है ।

नरवर्मा के समय गुजरात के चौलुक्यों ने मालवे पर आक्रमण शुरू कर दिए । चौहानों ने भी अवसर देख कर मालवे पर चढ़ाइयां की ।[18] नरवर्मा स्वयं अच्छा विद्वान् और विद्वानों का आदर करने वाला था । उसके पुत्र यशोवर्मा के राज्यकाल में चौलुक्यों के आक्रमणों ने और उग्र रूप धारण किया और वि स १२९२ में या उससे कुछ पूर्व जयसिंह सिद्धराज ने धारा पर अधिकार कर लिया ।

---

१६ उदयपुर प्रशस्ति से प्रतीत होता है कि अपनी तलवार के बल पर उसने धारा को हस्तगत करने का प्रयत्न किया था ।

१७ वाक्पतिराज की निम्नता का उल्लेख सोमदेव के आहड़ा के अभिलेख में है । हर्षोला के शिलालेख से उनकी लाटदेश के आस-पास स्थिति अनुमित की जा सकती है ।

१८ हमारी 'अर्ली चौहान डाइनेस्टीज़' में अर्णोराज का वर्णन पढ़ें ।

यशोवर्मा के बाद का इतिहास कुछ अन्धकारपूर्ण है। जयवर्मा और अजयवर्मा की एक माता नाम तो उसके दो पुत्र थे अजयवर्मा या जयवर्मा और महाकुमार लक्ष्मीवर्मा।[१९] अजयवर्मा शायद युद्ध में मारा गया और मालवे के मध्यवर्ग में शत्रुओं को प्रबल देख कर सम्भवतः लक्ष्मीवर्मा ने भीमाद प्रान्त के पास एक छोटा सा स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया।[२०] इसीके आस-पास सम्भवतः अपनी मृत्यु से पूर्व सम्भवतः शत्रुओं को रोकने की इच्छा से जयवर्मा ने हरिश्चन्द्रवर्मा को एक छोटी-मोटी जागीर दी थी।[२१] लक्ष्मीवर्मा की मृत्यु के बाद इसका ज्येष्ठ पुत्र त्रैलोक्यवर्मा उसी राज्य का अधिकारी हुआ। त्रैलोक्यवर्मा के बाद यहां क्रमशः हरिश्चन्द्रवर्मा उदयवर्मा और उसके छोटे भाई देवपाल ने राज्य किया।

केन्द्रीय मालवदेश की स्थिति इस समय कुछ अस्तव्यस्त सी थी। चौलुक्यों के आक्रमणों ने उसकी शक्ति तोड़ दी थी और कल्याण के चौलुक्यों ने भी इस पर आक्रमण कर इसकी स्थिति और खराब की। होयसल विष्णुवर्धन ने वि. सं. ११९९ से पूर्व धारा पर अधिकार कर लिया था और उसके पुत्र जगद्देकमल्ल के हाथ ही सम्भवतः जयवर्मा युद्ध में मारा गया।[२२] जगद्देकमल्ल स्वयं मालवे में न रहा किन्तु उसने बल्लाल नाम के किसी राजकुमार को सम्भवतः अपने प्रतिनिधि के रूप में मालवे में छोड़ा। समय उसके अनुकूल था। परमार दुर्बल थे। गुजरात में जयसिंह सिद्धराज की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी का प्रश्न उठ खड़ा हुआ था और चौलुक्य राज्य कुमारपाल इस स्थिति में न था कि वह मालवे पर

---

१९. देखें टिप्पणी ११

२० उदयकुमार के सं. १२२१ के शिलालेख में लिखा है कि जयवर्मा के राज्य के अस्त होने पर लक्ष्मीवर्मा ने अपनी तलवार के बल से अपना राज्य स्थापित किया।

२१ देखें टिप्पणी १२

२२ जगद्देकमल्ल मालवे के राज्य को नष्ट करने का दावा करता है।

एक दम आक्रमण कर सके। बल्लाल ने इसका पूरा लाभ उठा कर मालवे में अपनी शक्ति को सुदृढ़ किया और सम्भवत: चौलुक्य राजा अर्णोराज से भी मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया।

संवत् १२०७ के आस-पास बल्लाल चौलुक्यों से युद्ध करता हुआ मारा गया और लगभग २० साल के लिये मालवा सर्वथा चौलुक्यों के अधीन हो गया। कुमारपाल की मृत्यु के बाद जब गुजरात की स्थिति बिगड़ने लगी तो जयवर्मा के पुत्र विन्ध्यवर्मा को फिर स्वतन्त्र होने का अवसर मिला। चौलुक्यों के विरुद्ध उसका युद्ध कई वर्ष तक चला होगा। इसी युद्ध में विन्ध्यवर्मा एक बार हारा और गुजराती सेनापति ने उसके गोग्य नाम के स्थान को नष्ट किया।[23] किन्तु विन्ध्यवर्मा तो पुनरुन्मेष के लिये उद्यत था।[24] उसने गुजरातियों पर बार-बार आक्रमण कर अन्तत: मालवे से बाहर कर दिया।[25]

विन्ध्यवर्मा विद्वानों का आदरक था। बुल्हण बिल्हण आदि अनेक कवि उसके दरबार में थे। जैन विद्वान् आशाधर ने भी उस समय सपादलक्ष को छोड़ कर विन्ध्यवर्मा के राज्य में शरण ली थी जिससे स्पष्ट है कि उस समय विन्ध्यवर्मा के राज्य की स्थिति सुदृढ़ और सुव्यवस्थित थी। साथ ही इससे यह भी निश्चित है कि विन्ध्यवर्मा लगभग संवत् १२५ (?) तक जीवित था।

सुभटवर्मा के समय परमारों ने गुजरात पर सफल आक्रमण किया और उसके पुत्र अर्जुनवर्मा ने चौलुक्य राजा जयसिंह (जयन्तसिंह) को परास्त

---

२३ सुरथोत्सव सर्ग १५ श्लोक १६

२४ अर्जुनवर्मा के सं० १२७२ के दानपत्र में उसे 'पूर्वोन्मेषप्रतिबंधी' कहा गया है।

२५. देखें Summaries of Papers, Indian History Congress 1960 में विन्ध्यवर्मा और बुल्हण पर प्रो एम् बी वेलकर का लेख।

है। राजगढ़ और नरसिंहगढ़ के राज्य उमट शाखा के थे। सोढो की शाखाएं सिन्ध में थी। नरवलगढ़ (मालवा) मनावर (मालवा), धामस (हिमाचल प्रदेश) बीजोल्या (मेवाड़) आदि में परमारों के राज्य और जागीरें थी।

परमार वंशावली में बीकानेर के पवारों पर काफी प्रकाश डाला है जो इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है। किन्तु किस राजा ने किस समय उनको जागीर दी यह अज्ञेय है। बीकानेर रातुसर, खाखासर, बरसीसर, मोमासर, पीरेर आदि ग्रामों के नाम इसमें आए हैं। वंशावली के लेखन के समय पवारों के पट्टा में ये गांव थे —

१ गांव पल्हासर — ६ पेतासर
२ रातुसर — ७ मालकसर
३ खखासर — ८ बैरसीसर बेमपावास
४ बीपसर — ९ गांव कनोर खबर
५ मघणसर — १ जयपुर की राज के दो गाम

ठाकुर सोमसिंह के छोटे भाई मानसिंह के पट्टे में १ गांव उदयसिंह के २ गांव भारसिंह के ६ गांव पेमजी के १ गांव सुरजमलजी के २ गांव नाथूसिंहजी के १ गांव सुरतसिंहजी के गांव आदि का वर्णन भी वंशावली में है। सम्भवतः करणसिंह के नाथूसिंहजी के समय में इस वंशावली की रचना हुई। रचना समय अनिश्चित है किन्तु इस उल्लेख के आधार पर रचना काल निश्चित किया जा सकता है।। दशरथदास सिंघवत के परमारवंश-वर्णन का रचनाकाल पौष कृष्णा ३ संवत् १९२१ है जो बीकानेर की ख्यात के रचनाकाल से बाद का है।

कैप्टेन पाउलेट ने सन् १८७४ (वि. सं. १९३१) में अर्थात् दयालदास से दस वर्ष बाद पवारों के १८ गांवों और २०७४) रु की रकम का उल्लेख किया है। किसी पवार जागीरदार के पास उस समय पांच गांव से अधिक न थे। सोढों के पास दो गांव थे।

यह सब इतिहास की सामग्री धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। प्राचीन रेकर्ड के रूप में इसे रक्षित करना अपना कर्तव्य समझते हुए इंस्टीट्यूट इन ग्रंथों को प्रकाशित कर रही है। परमार जाति का अतीत अत्यन्त गौरव का रहा है। अतः उसके सत्य स्वरूप का कुछ आभास देने के लिये यह प्रस्तावना भी इन ग्रन्थों के साथ दी जा रही है। इसे पढ़ कर पाठक परमारों के विषय में अधिक जानने के लिये समुत्सुक हुए तो हम अपना कर्तव्य पूर्ण हुआ समझेंगे।

—दशरथ शर्मा

परमार विषयक कुछ पठनीय सामग्री

१ श्री धीरेन्द्र गांगुली— हिस्ट्री आफ दी परमाराज्

२ श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा—राजपूताने का इतिहास प्रथम भाग

३ प्रह्लादनदेव— पार्थपराक्रम व्यायोग

४ दशरथ शर्मा— विविध वीर जगद्देव (राजस्थान-भारती भाग ४, अंक ४ पृ ४०-५१
परमारों की उत्पत्ति (राजस्थान भारती) भाग १ अंक २ पृ २-८
(उक्त दोनों निबन्ध इस ग्रंथ के परिशिष्ट रूप में भी पृष्ठ ४८-५७ पर दिये गये हैं।)

५ प्रतिपाल भाटिया— मालवे के परमार (शोधनिबन्ध)

सिंढायच दयालदास और उनकी रचनाएँ

राजस्थानी साहित्य की समृद्धि में सब से बड़ा योग जैन और चारण कवियों का रहा है। जैन विद्वान् तो अधिकांश त्यागी मुनि थे और कुछ गृहस्थ श्रावक भी दिगम्बर-सम्प्रदाय में अच्छे साहित्यकार हुए हैं। उनका साहित्य निर्माण का उद्देश्य ज्ञान-वृद्धि या धर्म-प्रचार ही रहा है। वे किसी के आश्रित या साहित्य को आजीविका का साधन बनाने वाले नहीं थे जब कि चारण कवि अधिकांश राजाओं ठाकुरों आदि के आश्रित थे और आश्रयदाताओं के दिए हुए गाँव और द्रव्यादि से आजीविका चलाते थे। इसलिए उनका कविता करना एक पेशा-सा हो गया था। इसका प्रभाव इतना अधिक पड़ा कि उनके घरों में साहित्य-निर्माण का वातावरण इतना अधिक बना रहता था कि उनके घर के बालक बिना किसी विशेष शिक्षा के कविता बनाने लगते थे। इसी कारण दोहे, गीत कवित्त आदि फुटकर रचनाएं सैकड़ों चारण कवियों की हजारों की संख्या में प्राप्त हैं। राजस्थान के सैकड़ों शूरवीरों दानवीरों की यशोगाथाएं चारणों की इन रचनाओं में ग्रथित हैं। उनके रचित दूहा गीत आदि हजारों फुटकर रचनाएँ मौखिक रूप से प्रचलित रहने के कारण भुलाई जा चुकी हैं यानि विस्मृति के गर्भ में विलीन हो चुकी व होती जा रही हैं, पर लिखित रूप में भी इतनी अधिक रचनाएं[1] प्राप्त हैं कि उनकी सूची बनाना भी कठिन कार्य है।

---

१ बहुत सी रचनाएं उन कवियों के वंशजों के पास लिखी हुई होंगी जिनको वे अनुदार भाव से दूसरों को दिखाते भी नहीं। वैसे उन रचनाओं का इतना महत्त्व भी नहीं रहा व उनको छिपाए रखने में लाभ ही है। वे पड़ी-पड़ी चूहों और दीमकों का भोजन बन रही हैं या उन कागजों तथा घर के बालकों व स्त्रियों द्वारा भी नष्ट हो जाने पाती हैं। कई बार तो यह

है, किन्तु दयालदास ने अपनी ख्यात के प्रारम्भ अथवा अन्त में कहीं भी अपना परिचय नहीं दिया है। इससे तो यही अनुमान होता है कि वह अपनी प्रसिद्धि का विशेष अभिलाषी न था। मारू चारण जाति की मावलिया शाखा की एक उपशाखा सिंढायच है। ऐसी प्रसिद्धि है कि नरसिंह मकलिया को मण्डूरराव पड़िहार ने कई सिंहों को मारने की एवज में "सिंहदायक" की उपाधि दी थी जिसका अपभ्रंश 'सिंढायच' है। इसी वंश में बीकानेर राज्य के कुबिया गाँव में वि॰ सं॰ १८५५ (ई॰ स॰ १७९८) के लगभग सिंढायच दयालदास का जन्म हुआ था। वह महाराजा रतनसिंह का विश्वास-पात्र होने से राज्य संबंधी कार्यों में भाग लिया करता था और इस प्रसंग में उदयपुर, रीवां आदि राज्यों में भी गया था। उसे इतिहास से बड़ा प्रेम था और वह बीकानेर राज्य का ही नहीं बाहर की भी कई रियासतों के इतिहास का अच्छा ज्ञान रखता था। महाराजा रतनसिंह ने समय-समय पर उसका अच्छा सम्मान कर उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। अंग्रेज सरकार के साथ संधि होने के पीछे राजपूताना के राजाओं को अपने अपने यहां का इतिहास संग्रह करवाने की आवश्यकता पड़ी तब महाराजा रतनसिंह ने दयालदास को ही इस कार्य के लिए उपयुक्त समझ उसे राज्य का इतिहास तैयार करने की आज्ञा दी। इस पर उसने प्राचीन वंशावलियां बहियां शाही-फरमान प्राचीन सनद-पत्र पट्टे परवाने आदि संग्रह कर परिश्रम पूर्वक बीकानेर राज्य का विस्तृत इतिहास लिखा जिसको "दयालदास की ख्यात" कहते हैं। इसमें सरदारसिंह के राज्यारोहण तक का हाल है जिससे कहा जा सकता है कि यह विक्रम संवत् १९ ९ (ई॰ स॰ १८५२) के आस पास सम्पूर्ण हुई होगी। कर्नल पाउलेट ने अपने गैजेटियर ऑफ दि बीकानेर स्टेट के तैयार करने में अधिकतर इसी का आधार लिया है। इसके अतिरिक्त उस (दयालदास) ने देव महता जसवन्तसिंह के आदेशानुसार वि॰ सं॰ १९२७ में "देश दर्पण" की रचना की। महाराजा डूंगरसिंह ने इन दो ऐतिहासिक ग्रन्थों से ही सन्तोष न कर उसे समस्त भारतवर्ष की प्रान्तीय भाषा में इतिहास लिखने की आज्ञा दी। इस पर

वि सं १९१४ म उसने "आर्य आख्यान कल्पद्रुम" की रचना की। दयालदास नब्बे से अधिक वर्षों की आयु में वि सं १९४८ (१८९१) के वैशाख मास म का स्वर्गवास हुआ। यह महाराजा सूरतसिंह रत्नसिंह सरदारसिंह और डूंगरसिंह का कृपा पात्र रहा। इसके प्रपौत्र आसकरण के पास इस समय भी बीकानेर राज्य की तरफ से मोकमेरा गांवी और कुचिया गांव विद्यमान हैं।

दयालदास बड़ा योग्य और विद्वान व्यक्ति था। उसे इतिहास से बहुत प्रेम था। उसने बड़े परिश्रम से पुरानी वंशावलियों पट्टा बहियों शाही फरमानों और राजकीय पत्र-व्यवहार आदि के आधार पर अपनी ख्यात की रचना की जिससे यह बीकानेर के इतिहास की दृष्टि से बहुत उपयोगी है। इसमें कई फारसी फरमानों की नागरी अक्षरों में प्रतिलिपि तथा अंग्रेजी मुरासिलों के अनुवाद भी दिये हैं।

दयालदास ख्यातकार के रूप में तो प्रसिद्ध है ही पर वह सुकवि और टीकाकार भी था इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को है। इसके रचित 'यश रत्नाकर' की दोनों प्रतियां अपूर्ण ही मिली हैं। पहली प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी में है जिसमें केवल ६१ पद्य हैं। उसमें जयचन्द से लेकर बीकानेर के महाराजा रत्नसिंह तक का वर्णन है। बीच में कुछ अन्य कवियों के भी पद्य हैं। उसकी दूसरी प्रति जो मुझे मास्टर [illegible] शर्मा से देखने को प्राप्त हुई उसके अनुसार यह ग्रन्थ काफी बड़ा होना चाहिये। कुल वंश वर्णन नामक प्रथम प्रभाव में ५७ पद्य हैं जिसमें रत्नसिंहजी तक का वर्णन है इसके बाद सूरतसिंहजी के अभिषेक का विस्तृत वर्णन है। इसके बीच म संगीत के प्रसंग में भी महत्वपूर्ण विवेचन मिलता है जिससे कवि की संगीत विषयक विशद जानकारी का परिचय मिलता है। संगीत चर्चा के बाद सभा वर्णन में २ बाईं मिसल और दा दाहिनी मिसल के अनुसार की बाईं और दाहिनी मिसल सचिव और कवियों की मिसल अर्थात् सभा में कौन कौन से सरदार कहाँ कहाँ

बैठने के इसका विवरण दिया है। इसके बाद अभिषेक का विवरण दवावैत मे दिया है। फिर राव बीकाजी से लेकर महाराजा रतनसिंह के महलों का विवरण ११२ पद्यो मे लिखा है जहां ग्रन्थ का दूसरा प्रभाव समाप्त होता है। इसके बाद सीहोजी से लेकर रतनसिंह और लक्ष्मणसिंह के राजकुमारों का विवरण तीसरे प्रभाव के ५२ पद्यो मे दिया गया है। महाराजा लक्ष्मणसिंह महाराजा रतनसिंह के भाई थे और उन्हीं के आश्रय मे कवि ने ये ग्रन्थ बनाये। इसके बाद संवत् १८८६ के भूगल युद्ध का विस्तृत वर्णन है जिसमे दोनों पक्षों के युद्ध रूपक विशेष महत्व के हैं। उसके बाद युद्धमय नवरातों का वर्णन है। यह ग्रन्थ का छठा प्रभाव है। तदनन्तर संवत् १   ८ से १८६१ की तीर्थ यात्रा का प्रकरण ११३ पद्यो वाले सातवें प्रभाव मे है। फिर १८६७ मे सरदारसिंहजी के बीकानेर आने व दिल्ली मे लाट साहब की मुलाकात फिर ढीढवाणियां का वर्णन करके जोधपुर का वृत्तान्त पद्य मे लिखा गया है। उसके बाद राव जोधाजी से लेकर महाराजा सरदारसिंह जी तक की जन्म पत्रिका और जन्म संवत् के पद्य ग्रन्थ के नौवें प्रभाव में प्राप्त होते हैं। फिर सरदारों और कामदारों की पीढ़ियों के नाम दिये हैं। इसके बाद ग्रन्थ अपूर्ण रह जाता है। इस ग्रन्थ से यह स्पष्ट है कि जिस प्रकार दयालदास ने गद्य में ख्यातें लिखी उसी प्रकार पद्य मे बीकानेर के महाराजाओं का इतिहास वृत्तान्त पद्य बद्ध 'वंश रत्नाकर' में देने का प्रयत्न किया है।

दयालदास की दूसरी पद्य रचना 'सुजस बावनी' है जो महाराजा लक्ष्मणसिंह के सुयश वर्णन मे लिखी गई है। इसमें ५१ पद्य हैं। पद्यों मे जो आलंकारिक वर्णन है उन अलंकारों का विवरण गद्य या टीका के रूप मे दिया गया है। इससे कवि की काव्य-शास्त्र सम्बन्धी जानकारी का अच्छा परिचय मिलता है। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रति नं   १ ८ से विदित होता है कि सुजस कवि ने सुजस छत्तीसी बनाई थी उसके बाद १७ पद्य और जोड़कर इसे बावनी बना दिया है। प्रति नं   १ ८ में इसीलिए

इति श्री सुजस बावनी महाराज श्री श्री १ ८ श्री श्री तखतसिंघजी री संपूरण दयालदास कृत । पत्र ११ पुस्तकाकार, टीका सहित मसलारो के स्पष्टीकरण सहित । (प्रति नं १ ८ से स्पष्ट है कि प्रथम छत्तीसी बनाई पीछे बढ़ाई है) ।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी री की उपरोक्त राजस्थानी विभाग की प्रति नं० १ ८ में दयालदास रचित "सुजस छत्तीसी" आदि रचनाएं भी हैं । 'सुजस छत्तीसी' का प्रारम्भिक पत्र प्राप्त न होने से आदि के १४॥ पद्य अप्राप्य हैं । अन्तिम पद्य इस प्रकार है—

अंत—अस नृप को भटकौ सुजस निरमायो सुध नेम ।
रूप प्रथम वर्णन करी सुजस छत्तीसी पेम ।।२४।।

इस प्रति के पत्र कुछ फट भी गये हैं । अन्य रचनाओं में बैर हिन्दुमल का गीत पद्य ४, दूहा श्री हजूर साहिबां रा कुरम (कुछरो) तरफ पत्रो जिन मुरेठ दोहा १२ दूहा जोधपुर रा धणी राजा तखतसिंह जी (दु मनी कहलावे रो) म पेच सु पकड़ायो ना पाछो हुकमसिंह मै अजमेर सु जोधपुर इण भांत रा दूहा ५ ।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी री की प्रति नं ५१ में दयालदास रचित हरपत राव राजा बनेसिंह रा कवित तथा नव रत्नां रे नव कवितां री टीका के १४ पत्र सम्वत् १९२२ के लिखे हुए हैं । प्रति नं २ ५ में महाराजा रतनसिंह के कुछ दोहे दयालदास के रचित हैं । प्रति नं १४१ में बीकानेर के राठोड़ो के गीत और पवाड़ा री पीढ़ियां हैं । नवरत्न कविता की टीका का आदि अन्त इस प्रकार है ।

अथ नव रत्नां रा नव कवित्त भाषा छन्द लिख री टीका लिख्यते ।

दोहा—धन्वन्तरि क्षिपणक, अमर घट खपर वैताल ।
बररुचि शङ्कु वराह मिहिर कालिदास नरपाल ॥

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी की प्रतियों को देखने पर 'पंवार वंश दर्पण' के कुछ पद्य मिले उनके पाठ भेद भी लिये गये हैं। ऐतिहासिक भूमिका स्वामी नरोत्तमजी ने लिख कर इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ा दी है। और अपने २५ वर्ष पहले का विचार व प्रयत्न इस रूप में सफल होते देखकर मुझे हर्ष होता है।

दयालदास के जीवन चरित्र की विशेष घटनाएं और उनका चित्र प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया पर सफलता नहीं मिली। जिस महान साहित्यकार को हुए १   वर्ष भी नहीं हुए उसकी जीवनी और रचनाओं के संबंध में भी हमें पूर्ण जानकारी नहीं मिलती यह वास्तव में दुःख का विषय है। हम अपने साहित्यकारों की महान देन को कितनी जल्दी भूल जाते हैं इसका यह ज्वलंत उदाहरण है।

—अगरचन्द नाहटा

असुर संहारनखिल अवनि मुनिवर उपजी मन्न ।
किय वशिष्ट तहां क्षत्रि कुल पुरुष प्पार उत्पन्न ॥
पासुक भर बहुवान वर परमारह परिहार ।
किय वशिष्ट तहां क्षत्रि कुल सबसा पन बस सार ॥

कवित छप्पय

अनल कुण्ड उत्पन्न पुरुष[1] परमार प्रगट्टिय ।
प्रवर पंच तहं प्रगट विरू वश्च गोत्र सुतट्टिय[2] ॥
माध्यदिनि[3] शाखा प्रमाण जाके जग जाहर ।
कुलदेवी वाकी कहाय सच्याय नाम सुर ॥
जिण कुल अजीत सोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल बिरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो[4] ॥१

पल्स वेणु जिण बश प्रभु प्रिय प्रस्त प्रमाणहु ।
सुरपति मन्मथ सबल धौम्य पद धाक सुजानहु ॥
विनयपाल वरवीर देव पालग अगरमल्लहु ।
धुनीपाल नरपाल अवनिपति भरियद मल्लहु ॥
जिण कुल अजीत सोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल बिरद परिया इता खाटण सुजस खुमाणरो ॥२॥

---

१ पोखुण २ सुलट्ठिय ३ माध्यंदिन
४. माण्ड बराण जिह बख भर सुपह जप मसरस्थ तरस ।
मन्द बंस मिलो मबक्कर कमय हिय सुत कवि धरत हरन ॥१॥

नरिंदपाल नरनाह जासु पचान सु जाहर ।
नृप पक्कर तह निडर थिरू गगपाल सुथाहर ॥
रत्नकेत रिमराह काम जित वास मनकल ।
तेजपाल सुव तुग सुवन गयपाल सु सब्बल ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥३॥

राजपाल सुत राम धरम अगद व्रत धारी ।
अखैराज सव मरा सोम फाटन जग सारी ॥
धुनीपाल नरसिंघ सुतन महिपाल सकारण ।
विनयपाल वरवीर देष पातग सह वारुण ॥
जिण कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥४॥
धर्मगिद नृप सघर अवनिपति भये वीर अति ।
विहद धरण वाराह महीपति भये सुद्द अति ॥
किए वट नव कोट अवनि नव भ्रात सु अप्पिय ।
दिय अनेक तिह दान करिंद कविजन के कप्पिय ॥
जिह कुल अजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥५

कवित्त प्राचीन राजा धरणीवाराह ने अपने भाइयों को नवकोट प्रसन्न होके दिये जिस समय का ।

मेदपाट गहलोत दई गुज्जर सोलकी ।
द नरवर कछवाह सूर हिमकर कर साखी ॥
चारण कच्छ दीधी करग भाटा पूरब भाखही ।
मन गये कलिग वराम्य घर गिरिजापति माला गही ॥८॥

कालसेन सुत इन्द्र[1] अवनिपति[2] भये धीर मति ।
चित्रांगद जाके विचित्र महिपती सुहद मति ॥
जासु सुतन[3] जगजान सेन गधव सकारन ।
सुतन वीर विक्रम नरेश पर दुख निवारन ॥
जिण कुल[4] अजीत सोभी सुजस सुभट सिद्ध अवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इला खाटण सजस खुमाण रो ॥९

जिह[5] सु धीर विक्रम सजान[6] पर दुख सु कट्टिय ।
जिह सु धीर विक्रम नरेश थिर कीर्त्ति सु थट्टिय ॥
जिह सु धीर विक्रम नरेश शक बध नरस्वर ।
जिह सु वीर विक्रम सुजान वर दाय कीर्त्ति वर ।
दस अयुत उवक कविजन[7] दियव सुभट सिद्ध अवसाण रो।
उजवाल विरद परिया इला खाटण सुजस खुमाण रो ॥१०

---

१ इन्द्रमन भूप २ अर्वेत ३ सुअवन
४ इन मुह मणि पारख दिपय निरव मीठ प्रभइ करख ।
जिन मत सिरी मधुकर उनम हित पुत्र नमि वारव हरन ॥६॥
५ जिमह ६ नरेश
७ मन सिमर धर इडु तम मध हरण तिन हि ॥७॥

सुतन[1] वीर विक्रम नरेस विक्रम चरित्र वर ।
भय उजासु भूपाल धीर महिपाल भमउ[2] धर ॥
मधु पालग जग मुकुट सुवन तह[3] चद चद सम ।
शील ध्वज तह सुतन[4] देव जोगी इद्रिय दम ॥
सुत तनहसेन[5] सिहल सुपह सुभट सिद्ध मवसाण[6] रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस सुमाणरो ॥११

भोज उदयकरण[7] भय अजेय वह देव करण जप ।
सत्यसेन तह सुतन[8] अवनि गज वाजि कविन अपि ॥
सुतन जासु शिव सुपह शालिवाहन सुरपति सम ।
राजहस हरवर्शसिध राजह तिह सभ्रम ॥
मधुजस[9] बुधायच नृपति महि सुभट[10]''सिद्ध मवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इता खाटण सुजस सुमाण रो ॥१२

कवित्त जगदेवजी का

जिनह जोध जगदेव नद आदित्य नरेश्वर ।
जिनह जोध जगदेव वीर वर दाय कीर्तिधर ॥

---

१ सुतन २ धुरंधर ३ तिए ४ सुगह ५ अएउ
६ अमृत मौलोक्ति धन करण ।
तिन हि ॥५॥
७ उदयकरण नृप भए ८. सिर्द ९ धनन १ मधुमल्ल
११ मधु नाम रौव ताके भराए ।
तिन हि ॥६॥

विजैपाल महिपाल जोदरायह सिंह वानहु ।।
समरथ सुत भए सिंह महिपत सुत श्याम सु मानहु ।।
जिण कुल श्रमीत लोभी सजस सुभट सिद्ध प्रवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजण सुमाण रो।।१६

हिरण कठीर शिव राज सुतन सिंह सोम सकारण ।
खीमकरण सुत राम भाज वह वारद मारण ।।

वछ भाचक पुत अमर विनह मख वीर सुभाणहु ।
अमर सुत सिंह अमर, अमर सपत सु प्रमाणहु ।
सुत पेम नाम हमीर सुत सिव सुत नृप श्री पुरणरण ।
सिव वंस सिवी मधुकर तनय हित पुत नमि वारद हरण ।।८।।
माहप राम सम मुगट मिनहु राजस बन बाहर ।
करमचन्द सिंह अमर अपेव पंचाण सु बाहर ।
मालदेव सेना प्रमाण सादूल वीर जिम ।
रायपाल जयराम महर पूरनर सु पम्मिम ।
पम रूपसप बम रखन पस बखत प्रमाव मधु सिंहवरन ।
सिव बस सिवी मधुकर तनय हित पुत नमि वारद हरण ।।६।।
वत पमाहु अवतन्न सुतन सुरतान सवारन ।
अखतसिंघ सिंह अमर माहन सिंह पोर सुमारण ।
श्रीत सुघर केहर कठीर नवमल अमर नटिव ।
महन सोमा माधव मान पिर श्रीत सुजसिम ।
सुरतार सुतन पठ जास बग छपन पुर एरणधरण ।
सिव वंस सिवी मधुकर तनय हितसुत नमि वारद हरण ।।१ ।।

इति श्री पमार सिवराजविपरी री वंशावली रा कवत सिवराज पमार जी रा कह्या ।

अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर, राजस्थानी विभाग प्रति नं १८१

समरशाह घतसेन भए व्रिज घील मुमारी ।
भीर देव घत घरन मवनि सिंह है भवतारी ॥
जिण कुल भजीत लोभी सुजस सुमट सिद्ध भवसाण रो ।
उजवास विरद परियां इता खाटण सुजस सुमाण रा ॥१७

सिंहल देव सुजाणसेन रूपह तिह सभ्रम ।
दीपसेन चित उदधि देव भादास इन्द्रिय दम ॥
चदसेन जयचद मुह जस भग सुजानहु ।
उदचद विवराज भारमल भीम सु मानहु ॥
सुत ता भजीत लोभी सुजस सुमट सिद्ध भवसाण रो ।
उजवास विरद परिया इता खाटण सुजस सुमाण रो॥१८

खीमकरण गुणराज कामसी भीम बखाणहु ।
खेम भूप मखराज जबर रतनाकर जानहु ॥
ज्वान भान ससपाल जास ऊदल मुत पाहर ।
सज्जनसेन सकाल जबर कैदल ते पाहर ॥
जिण कुल मजीत लामो सुजस सुमट सिद्ध मवसाण रा ।
उजवास विरद परिया इता खाटण सुजस सुमाण रा ॥१६

साघण रावत सबल सुतन हमीर सकारण ।
जिणर हार्पो जबर माज मघ दारद मारण ॥
मपराय जग मुकुट मुतन रघुपति सुरपति सम ।
कमचद त कवर सबल पचाण मु सभ्रम ॥

जिण कुल मजीत लोभी सुजस सुभट सिद्ध मवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इता खाटण सुजस खुमाण रो ॥२०

नाथ माण्थी नगर जिनह शादूल सु आनहु ।
रायशाल जसरखन मेर मन केहर मानहु ॥
जस गायक जगरूप जिनह सुलतान सुजाहर ।
जतसिंह स जबर धय गूवर तें थाहर ॥
शिरदार भयउ ताके सुतन सूभट सिद्ध मवसाण रो ।
उजवाल विरद परियां इतां खाटण सुजस खुमाण रो ॥२१

सामन्धित्त मजीत करण दत रो मधिकाई ।
मत रो गोरम सखन धोल गमय सवाई ॥
सामन्धित्त मजीत मथमि कबिपूरण माशा ।
॥

सुदता मजीत लाभी सुजस सुभट सिद्ध मवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया दर्तां गाटण सुजस खुमाण रो॥२२

जस गायक मपजीत पास करणा कवि पासां ।
जस गायक मपजीत चमू राखण जस यासा ॥
जस गायक मपजीत याच दरयास चिमागण ।
माथ करण दस उघिट राज ल नामा रसरण ॥
जाणगर जिना लाभो सुजस भाषा पट रस भय रो ।
गुन्ता मजीस महिमा समद जो पीवो उगन्य रो ॥२३

जेण वश विक्रम नरद्र शकवध नरेश्वर ।
जेण वश पवार भोज सुजईड सुरेश्वर ॥
जेण वंश नृप मुज थिरू जग कीरति थप्पिय ।
जेण वश जगदेव शीप ककालि समप्पिय ॥
जिण कुल भजीत लोमी सुजस सुभट सिद्ध भवसाण रो ।
उजवाल विरद परिया इसा खाटण सुजस सुमाण रो॥२४

भनल कुड उत्पन्न कोम क्षत्रिय वशिष्ट किय ।
भरवुद धार उजीण देव मुरयान राज दिय ॥
पिड शत्रु न किय प्रलय कोम परमार कहाये ।
पुनि वाराह पुराण गिरा श्रुति व्यास जु गाये ॥
जिण कुल भजीत लोमी सुजस सुभट सिद्ध भवसाण रो ।
उजवास विरद परिया इसा खाटण सुजस सुमाण रो॥२५

इति श्री परमार वश वर्णन सिढायच दयालुदास खेतसीयोत गांव दूवियेके निवासी ने बनाया सम्पूर्ण हुवा ।

ठाकुरां राज श्री भजीतसिंहजी सुमरुसिंहोत गांव नारसेर ठाकुरों की माज्ञा से बनाया पवारों की पीढियां पढ़ सा बचीस की वरभरता वीरता का वर्णन किया । मिती पौष कृष्ण ३ समत १६२१ का ।

पंवार वंशावलि

अथ पवारों की वंशावली की वार्त्ता लिख्यते ॥ वशिष्टजी नें म्लेच्छो के सहार के निमित्त आबू पर्वत पर अनल कुण्ड से क्षत्रियो की च्यार जाति उत्पन्न कीई उनकी यादमीरी—

१ प्रथम चौलक्य जिसका सोलखी जिनको सोले लापा प्रसिद्ध है।

२ दूसर परमार जिसकी शाखा पेंतीस हुई।

३ तीसरा परिहार जिसकी शाखा छत्तीस हुई।

४ चोथो चहुवाण जिसकी शाखा चोबीस हुई।

परमार का वंस गोत्र पच प्रवर माध्यंदिनी शाखा वाजर सेही (वाजसनेयी) संहिता कात्यायनी सूत्र और कुलदेवी चच्याय है। जिस परमार वंस में राजा पल्स हुवा बहा सें पीढिया लिखी है—

१ परमार वंस में
२ राजा पल्स हुवा
३ राजा वसु
४ राजा प्रथु
५ राजा प्रिय व्रत
६ राजा सुरपति
७ राजा मग्मधराय
८ राजा धोम्यपल
९ राजा मधु सुरपति
१ राजा विनयपददेव
११ राजा देव पालग
१२ राजा पुनीपाल
१३ राजा नरपाल
१४ राजा नरसिंहपाल
१५ मन्दपाल राजा
१६ राजा पपायन
१७ पुरु गा राजा
१८ राजा मयपाल

१९. राजा रत्नकेतु
२० राजा कामजीत
२१ राजा तेजराज
२२ राजा सु गपाल
२३ राजा गयपाल
२४ राजा राजपाल
२५ राजा रामपाल
२६ राजा धर्माङ्गद
२७ राजा धर्मराज
२८ राजा सदमठराम
२९ राजा सोमपाल
३० राजा पुनीपाल
३१ राजा नरसिंह
३२ राजा महीपाल
३३ राजा विनयराज
३४ राजा देवराज
३५ राजा मधु धर्माङ्गद
३६ राजा धरणीवाराह

इस राजा धरणी वाराह के नव भाई धौर हुय उन्हो के नव कोट प्रसन्न होके दीय थ जिनकी यादगीरी—

गढ मडार सावतसिंह को दीया
अजमेर धर्मसिंह को दीया
गढ पूगल गजमलजी का दीया
गढ मुदवो माण का दीया
आमराज को धाट दीया
झांसू को पारकर दीया
भलसी को पमू दीया
पालणसी को अर्बुद दीया
भोज को जालोर दीया
राजसी को किराड दीया
राजा धरणी वाराह
भवतो का इसक पुत्र तीन
३७ राजा धार गिर भवती
२७ इसस छोटा सोढा
उसका थाखा सोढा कहाया
तृतीय पुत्र धाखसा इसकी
सन्तान धाखसा कहाते हैं—
३८ राजा बाहुड धार गिरि का
३९ राजा धीरसेन
४ राजा पोपसेन
४१ राजा सजनसेन
४२ राजा बुधसेन
४३ राजा काससग
४४ राजा कलिङ्गदेव
४५ राजा इन्द्रसेन
४६ राजा चित्राङ्गद
४७ राजा गन्धर्वसेन
४८ राजा विक्रमादित्य
४८ भाइ भर्तरी
४८ सबासणया वेताल
४८ बाई मैणावती
बगाल के राजा को पर

एाई तत्पुत्र गोपीचन्द हुवा
४९. राजा विक्रम चरित्र
विक्रमादित्य का पुत्र था
उसका माई विनमपाल
जिसका सन्तान का श्रोस
वाल वरिणये हुये—
५० राजा मूपाल
५१ राजा महीपाल
५२ राजा मधुपाल
५३ राजा चन्द्रसेन
५४ राजा सिन्धु
५५ राजा सिन्धुसम
५६ राजा सिंहलसेन
५६ भाई राजा मुंज
५७ राजा भोज
५८ राजा उदयकरण
५९ राजा देवकरण
६ राजा सत्यसेन
६१ राजा भीमसेन
६२ राजा शालिवाहन
६३ राजा हंसध्वज
६४ राजा हरिवंश
६५ राजा सिंहसेन
६६ राजा मधुराय
६७ राजा कुमायप
६८. राजा साम्बद
६९ राजा उदयादित्य जिसका
भार मे राज्य था—
७० राजा जगदेव
इसका राज्य पाटण में था
७१ राजा पाताल
७२ राजा प्रजयपाल
७३ राजा सोडम
७४ राजा विजयपाल
७५ राजा महीपाल
७६ राजा जिंदराव
इसने धार सीनी
७७. राजा समर्थराय
७८. राजा सिन्धुदेव
७९. राजा श्यामराय
८ राजा शिवराज
८१ राजा सोमपाल
८२. राजा क्षेमकरण
८३ राजा रामकरण
जिसका माई भाधकरण
भ्रासी में राज कीया—
८४ राजा मानकरण
८५ राजा समर
८६ राजा सिंहल
८७ राजा सत्यसेन
८८ राजा धीरधमल
८९. राजा सिंहसेन
९ राजा सिंहलदेव
९१ राजा रूपसेन

९२ राजा दीपसेन
९३ राजा भादल
९४ राजा चन्द्रसेन
९५ राजा जयचन्द्र
९६ राजा मुंगराय
९७ राजा जसगदेव
९८. राजा उदयचन्द्र
९९. राजा शिवरत्न
१ राजा भैरसी
१०१ राजा भीम
१ २ राजा खीवसी
१ ३ राजा भर्तराज
१०४ राजा गुणराज
१ ५. राणा कामसी
१ ६ राणा भीम
१ ७ राणा खेमाल
१ ८ राणा भर्तसी
१ ९ राणा रतनसी
११० राणा जवानसी
१११ राणा भानुदेव
११२ राणा जसपाल
जिसको देवी मूवाल सतुष्ट होके वरदान दीया—
११३ राणा उदयसी
११४ राणा लखमण
११५ रावत केदोजी
जिसको बादशाह अलु भलाउद्दीन श्री नगर दीया सर्व गाव ३५
११६ रावत साधण
जिसने पिसागण नगर बसाया इस रावत साधण के रावत के ११ भाई हुये जिनकी नामावली
१ भाई सातल
१ भाई पातल
१ भाई लखण
१ भाई प्रताप
१ भाई मधुसाल
१ भाई लाकूं
१ भाई समरसी
१ भाई सूरजमल्ल
१ भाई सीहड
१ भाई गोकुल
१ भाई भैरसी
रावत साधण के तीन पुत्री हुई
१ हमीर
१ पचायन
१ चौत
११७ रावत हमीर
११८ रावत हापा हमीरोत इसके ११ भाई हुये उनके नाम
१ भाई सोढो
१ भाई पुष्पपाम

१ भाई उदयसिंह
१ भाई ईन्दो
१ भाई नापो
१ भाई वीको
१ भाई मैणसी
१ भाई जेठमल्ल
१ भाई कलजी
१ भाई रूपसी
१ भाई हापा
११६ मैपोजी जिसको अजमेर का पट्टा मिला उनके दोय छोटे भाई थे
१ भाई कापल
१ भाई जोधराय
१२ रघुनाथजी जिसके भाई दोय थे
१ भाई डूगरसी
१ भाई किसनजी
१२१ कर्मचन्दजी रघुनाथोत जिसके भाई च्यार थे
१ भाई बैरीशाल
१ भाई पृथिवीराज
१ भाई गोकुल
१ भाई भोजराज
१२१ कर्मचन्द के पुत्र ५ हुये
१ पचायण
१ जयमाल
१ चूंडो
१ मेरो
१ सावलदास
१२२ पचायण कर्मचन्द का जिसने पचेवर बसाई उदयसिंह वहा रहा
१२३ मालदे पचायण का जिसने मालपुरा बसाया राजा पदवी पाई उसके पुत्र ५
१ कलजी पचेवर मे हुवा उनकी सन्तान वहा ही रहे
१ सामजी उनकी सन्तान केकिडीया नगर म रहते है—
१ माधकरण १ शादूलजी
१ चन्दसेन
शादूलजी मालदेव के पुत्र उन्होने श्री नगर मे राज्य कीया जिसके ग्राम २७ थे
१२५ रामसल शादूलोत हुवा— इसके नव पुत्र थे—उन्होके नाम—
१ केशरीसिंह १ फतेसिंह
१ मुकन्दसिंह १ अमोपसिंह
१ गजसिंह १ अजबसिंह
१ मनतसिंह १ भक्तसिंह
भाव पनवाड रहा—
१ कुशयामसिंह

१२६ पीठी मे केशरीसिहजी हुम
उनका भाई झूझारसिहजी
जिनका पुत्र राजरूपजी
गाव वलोरी इलाके मेवाड
के म रहे—
केसरीसिहजी के दूसरे
भाई भक्तसिहजी जिनके
पुत्र जोधसिहजी—
मानसिहजी
यह बीकानेर आये उनको
श्री दरबार से बोलाउ ग्राम
मिला—
धजबसिहजी रायसिलोत
गावका कार्वरा—
इनके पुत्र गोकुलदासजी
आया उनको श्री दरबार
से गाव रातुसर दीया—

१२७ जगरूपसिह
ठाकुर केशरीसिहजी देवलोक
हुये पीछे उनकी ठकुराणी गौड
धर्मसिहजी की बेटी राजकवर
ने बीबोल्या से भक्तसिहजी क
पुत्र जगरूपसिह को गोद लिया
था—इस जगरूपसिह को गोदा
म वहा स निकाल दीया तो वे
बीकानेर गया वहा उसको
धाधासर ग्राम पट्ट मिला

१२८ सुलतानसिहजी
यह रामसिहजी के पुत्र थे
जगरूपसिहजी के गोद आय

१२९ चैतसिह सुलतानसिहोत
इनको गाव कणीसर—और
भोजासर पट्ट हुवा—
इनके छोटे भाई रूपजी
को गाव पीरेर पट्टे मिला

१३० केशरीसिहजी चैतसिहोत
इनके छोटे भाइयों के नाम
गूदडसिहजी—
दोलतसिहजी
केसरीसिहजी के पुत्र २

१३१ बडे सुमेरसिहजी ये पाता-
वतो के भाणेज थे—इनके
सन्तति न हुई छोटे माधव
सिहजी थे—

१३२ माधवसिह-इन्होने करणी-
सर के बीको की भाणजी
अपनी बहुए गिरदारकवर
की विवाह बीकानेर के
महाराजाधिराज सुरत
सिहजी से कीया—
माधवसिहजी के छ पुत्रों
म स भीमसिहजी गद्दी बैठे-
पुत्र १—चान्द कवर ग्राम
झरा के राजा भक्तावर

सिहजी को परणाई
१३३ भौमसिहजी
१३४ ठाकुर गुलाबसिहजी भौम सिहोत—
इनके पुत्र २ है—
बडा लछमणसिहजी
छोटा हमीरसिहजी
दोनू कवरपदे हैं—
मय पवारो के पटटे म बीकानेर के राज्य मे ग्यो २ गाव है उनकी नामावली लिखते हैं—
ठाकुर भौमसिहजी की कोटडी राणासर मे है यहा स १६ १ मे उनने गढी बणाई थी—
भौमसिहजी के पटटे के गाव—
१ गाव राणासर
१ गाव रातूसर
१ गाव कालासर
१ गाव भीवासर
१ गाव मनवानसर
१ गाव जेतासर
१ गाव मासकसर १
१ गाव जेतसीसर देवपाल का
१ गाव भनोर डावर
मामसर की डाव क चाय हिस्से तो भौमसिहजी क पुत्र गुलाब-

सिहजी के है—
और एक हिस्सा सिन्धु के खान का है—
ठाकुर भौमसिहजी क छोटे भाई कानसिहजी के पट्टे के गावो की नामावली—
१ गाव राजासर में कोटडी
१ गाव बेलासू
१ गाव पू राबा बास—
ठाकुर कानसिहजी क छोटे भाई शिवदानसिहजी
उनके कानसिहजी का बेटा तखतसिह गोद आये जिन पटटे क गावो के नाम—
१ गाव सोनपालसर म कोटडी
१ गाव विजयराजसर
कानसिहजी के पुत्र ४ थे
१ तखतसिहजी
१ रामनजी
१ बहादुरजी
१ दूलजी
ठाकुर पार्वसिहजी माधवसिहोत उनक पट्ट क गावा के नाम
कोटडी जैतसीसर
१ गाव जैतसीसर
१ गाव मूल्यो
१ गाव अमरसर

१ गाव पीरोर
१ गाव साडासर
१ गाव बोलाइ
ठाकुर भार्वसिहजी से छोटा भाई ममजी उनके पट्टे का गाव—

१ कुसनासर
भार्वसिहजी से छोटा भाई सूरजमसजी उनके पट्टे के गावो के नाम
१ गाव साबलसर
१ गाव बतको—

नाथूसिहजी इन्द्रसिहोत के पट्टे म पहली गाव पीरोर पा— मब गाव करणसर है—

ठाकुर गूदड़सिहजी चैतसिहात का परिवार—

१ सरदार्रसिहजी गूदड़सिहोत—
१ मानसिहजी गूदड़सिहोत
१ चैनसिहजी गून्दड़सिहोत
ठाकुर सरदारसिहजी के पुत्र ४ भये

१ कुमारणसिहजी—   १ कछूजी मभाणे के
वाघावता का भाणेज
दूसरा ब्याव गाव मागराणे वाघावतो के कीया—
उनके पट क १ सिवसिहजी नत्पुत्र मतावजी
सरदारसिहजी न तीसरा वीवाह बीका किसनसिहोत के कीया—उनका भाणेज विसूतसिह सरदारसिहोत—चैनसिह गूदड़सिहोत क गोद बैठे—
श्री बीकानेर की तरफ स पवार गूदड़सिहोतो के पट्टे क गावा क नाम—

१ गाव एक नारसरो—भजीतसिहजी क है—
भजीतसिह कुमारणसिहोत—कुमारणसिह सरदारसिहोत—सरदारसिह गूदड़सिहोत—

खगजी सरदारसिहोत के बेटे रणजीतजी के पटटे मं
१ गाव एक कीकासर है—

ज्ञानसिहजी के बेटे हरिसिहजी के पट्टे के गाव—
गाव एक मावो छिबरासर—मावो बभूतसिह चैतसिहोत
के है—

अथ गाव करणसर के ठाकुरों की पीढियों के नाम—

१ सुलतानसिहजी १ रूपसिहजी २ इन्द्रसिहजी १ नाथूसिहजी
जिनके पुत्र ४
४ भूभारसिहजी इनके पुत्र ६ मजीतसिहजी ४
गुलाबसिहजी ४ ४ पदमजी ४ कु मकरणजी—

अथ पंवारों की ३५ शाखा हुई जिनके नाम—

१ काबा २ कूकवा ३ बिराणा ४ हरीया ५ हुबड
६ नीबेछा ७ बोडाणा ८ मुरबस ९ दायमा १ बूगसा
११ बाघोत १२ सिदायच १३ मोडसी १४ बीर १५ उमट
१६ बाहू १७ मायस १८ मू गा १९ सोढा २ साखला
२१ आगा २२ जैपाला २३ सीयोर २४ बुगोडिया २५ पायस
२६ डोड २७ बोरड २८ पवार २९ भूरिया ३ लाहड
३१ पीथा ३२ कु कणा ३३ मोरी ३४ गेला ३५ किगवा—

साख चवाणों की—

१ देवरिया २ वेवडा ३ हाडा ४ खीची ५ बालीसा
६ सोनगरा ७ मायस ८ टाक ९ निर्वाण १ मुरेचा
११ मालदेचा १२ वाघोड १३ कामखामी १४ बगरेचा
१५ चीता १६ चीवा १७ मरव १८ बेरव १९ पावेचा
२ मुरवेस २१ मुरेचा २२ सीपटा २३ चित्रावा २४ बडालिमा

शाखा पड़ियारों की—

१ पड़ियार २ ममसिया ३ इन्दा ४ कासया ५ बूसएा
६ मूसोरा ७ चोरी ८ रामठा ९ बाघा १० भाभिया
११ सबर १२ छिमक १३ चामस १४ फमू १५ पेमिया
१६ चोनरा १७ वाफएा १८ भापडा १९ पेसवाल २ गोठवा
२१ टाक २२ टाकसिया २३ चावोरा २४ माफ २५ सूमोर
२६ सोमोरा २७ जेठवा—

शाखा सोलंकियों की—

१ सोमकी २ बाघेला ३ बालण ४ बेराड ५ वीरपुरा
६ बामया ७ वाला ८ रणधीर ९ पू डावत १ बहुमा
११ मुग्ग १२ सोजतिया १३ डालिया १४ डाई १५ चालूका

सोरठा

पृथिमी घणा पाचर पृथिपी पवारा तणी ।
एक अजीएी मार दूजो नाम बैसणो ॥ १ ॥
(पत्र ७ प्रति भागरकर प्रोरियेण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट,
न १२ १ ९१-१८९९)

अन्य एक प्रति से—

॥ अथ साख पवारां री विगत लिख्यते ॥

१ पवारा	१ छाहड	१९ पुरीया	२८ आमा
२ सोढो	११ मोटसि	२ मापी	२९ ठुठा
३ साखसो	१२ हूबड	२१ कछोटीया	३ गुमा
४ माभा	१३ सासारा	२२ कामा	३१ गलडा
५ मायम	१४ जैपाल	२३ ककडा	३२ कीसोसीया
६ पुपेम	१५ कगवा	२४ मेर	३३ ठुठुएा
७ पाएीसवम	१६ काबा	२५ पुट	३४ पीपी
८ बहीर्य	१७ उमट	२६ टस	३५ डाड
९ बाराहद	१८ पधु	२७ टेकम	३६ बोरड

पमारा री साख रो कवत—छप्पै—

कावानै कुम्भा बहुत पिंडु विराणा ।
हरीया हुवड नोम दाडो नघा बोलाणा ॥ १ ॥
गुजर महुडा सेड मारी गुरबस मुणजै ।
वाहमा टुगमा बाघा गज भाण भणजै ॥
सडाइन मीर चुडसमा प्रथमी सुजस प्रमाणीया ।
मरसा बीर उमट-महट वस पमार वखाणीया ॥ २ ॥

कवत दूजो—

भूर वह जे भाथवे वरगण बहुसे भाममे ।
पेसेरा पागसे आस बहुसे स पहुसे ॥
हगीयार बम दब सोढ सासमा भिमासा ।
गुया भर गमडा भरड आगा बेपासा ॥
सोमार दाम डुगोठीया पायल डड पमार हूर ।
एतली सास उपात गिर मधे राव चाहुड समर ॥ १ ॥

वशावली पमारा री

माधुसपाम	५ राजा पाल	१७ चित्रागद
मनस कड नीकास	६ रा पकराय	१८ गन्धपसेम
पच प्रबराय	७ भुधमार	१९ बीर विक्रमा
बस्स्य गाभाय	८ भरगी बारा	२ विक्रम चरित्र
मारघमनी सा०	९ बारगिर	२१ राणो भर्ज
मचइ नभदेवो	१ माहडजी	भुपाम
माद जुगादम	११ भीरसेन	२२ महिपास
कवम	१२ पाहपसेन	२१ मधुपाल
१ प्रमाजी	१३ ममसन	२४ चेडजी
२ मागेच	१४ वुपमन	२५ गासाम
३ वामप	१५ काममन	२६ सपम सन
४ पुम रिग	१६ वुपसम	२७ भोजराज

२८ उपकरम	४ पातल सभ	५७ रापायसमजी
२९ देवकरन	४३ राणी गुगराज	५८ मुम्भरसघ का भाइ
१० राजा सत्य	४४ साखण	बखतसघ
११ राजा सीव	४५ जसपाल	५९ ठाकर जगतस्सघ
१२ सालवाहन	४६ रावल मसरणसी	६ सुरताणसघ
१३ राजा हुस	४७ रावत कैवामी	६१ ठाकर जैतसगजी
१४ हरवस	४८ रावत सामगा	६२ ठाकर केसरीसगजी
१५ राजासघ	४९ रावत हमीरजी	६३ ठाकर मामोसघजी
१६ राजा मधु	५० रावत सबाइमैपो	ठाकर चान्दसघजी
१७	५१ रायचदासजी	मेमजी
१८ दुवाइघ	५२ करमचदजी	सूरजमलजी
१९ बाघजी	५३ पचायणजी	भोमजी
४ उदै भावीत	५४ मालदेजी	कानजी
४१ जगदेव	५५ साबुलजी	सीवदान
		चादजी के सामें
		कर दीपसंगजी

(प्रति श्री सार्दूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट बीकानेर)

परिशिष्ट १

बीकानेर राज्य के ठिकाने

खाप पंवार

ठि० जैतसीसर—पटै गांव १० चाकरी असवार १२ फो० रे० रु० २४) माफ।

ठि० जैतसीसर—महाराजा श्री सूरतसिंघजी रा राज में—— भोपालसिंघ केसरीसिंघोत नू श्रीजी रा साला रा ध्यान् ताजीम इनायत हुवो।

ठिकाणो जैतसीसर—महाराजा श्री जोरावरसिंघजी रा राज में। ठा० जैतसिंघजी नै।

सिंघ पुत्तर किसनसिंघजी उत्तमसिंघजी २ दीपजी ३ चांद सिंघजी ४ भोपालसिंघजी ६ केसरीसिंघजी ७ अतसिंघजी ८ सुलतानसिंघजी ६। रेख रा रुपिया तो माफ। रुक्काती पुत्र। छोरव रा रुपवा लागै ५५)।

ठि राणासर—पटै गांव ५ चाकरी असवार १२ फो रेख रा रु ९० १) माफ।

ठि राणासर—महाराजा श्री रतनसिंघजी रा राज मे सं० १८८८। ठा भामसिंघजी श्रीजी रा माना रे बेटा भाइ रा ठिकाणसू ठि ताजीम इनायत कीवी।

सिंघ गुलाबसिंघजी १ मोमसिघजी २ माधोसिघजी ३ कसरी सिघजी ४ जैतसीसर में मिळे।

राणासर मै छोटकी या गही सं० १८०१ पाली।

रेखरा रुपीया माफ। रुखाळी धुवो। कोरड रा रुपीया लागै।

ठि० नारसर—पटै गांव ६ चाकरी असवार ६ फोज रेख रा रु० १२ ०) माफ।

ठि० मारसर—श्रीजी महाराज श्री सूरतसिघजी रा राज मै सं १ ५१ ठाकर सिरदारसिंघजी गुदड़सिघोत नू इनायत कीयो। ताजीम इनायत हुइ स० १८०८ रेख रा रुपीया माफ। रुखाळी धुवो। कोरड रा रुपीया लागै।

सिंघ भजीतसिंघजी १ सुमाणसिम २ सिरदारसिघ ३ गुदड़सिंघजी ४ जैतसर म मिळे।

ठि० सोनपालसर—पटै गाव ३ चाकरी असवार ३ फौज मै रेख रु० ६ ०) माफ ठिकाणा महाराज श्री रतनसिघजी रा राज मै ठाकरा [illegible]सिघजी [1] नै ठि० इनायत हुवो सं० १८२४।

सिघ बिड़दसिघ १ दलतसिघ २ सिवनसिघ ३ माधोसिघ रुखाळी धुवो। कोरड रा रु ५) लागै।

ठि० राजासर—पटै गाव ३ चाकरी असवार ३ फौज मै रेख रा रु० ६००) माफ।

---

१ इनके बनावणि के १ प्रतिमा प्रति में १८१ मैं मिले है जिसका पाठ भेद सरकार बड़ा विभाग की टिप्पणी में दिया जा चुका है।

ठि० रामासर—माहराज श्री रतनसिंघजी रा राज मै सं० १८६२ ठि भोंनसिंघजी नै ठीकाणो इनायत कीधी। रूपासी पुणो। कोरड रा रु० २५०) लागै । ताजीम महाराज सिरदारसिंघजी सं० १६०८ री मिगसर वादि ११ इनायत करी ।

सिंघ वृत्तसिंघजी १ भोंनसिंघ २ माधोसिंघ ३ जैतसीसर सु सिलै ।

ठाकरां माधोसिंघजी रै महाराज श्री रतनसिंघजी भायेज लागै । तैसु आप पवार मै ताजीम ५ पांचवा गांव ३१ उन्हा री भाग्य में इनायत कीया ।

सोनपालसर—ठाकरां सिंघदानसिंघजी नै महाराज श्री सिरदार सिंघजी इनायत कीधी ताजीम सं १६ ८ मिगसर वादि ११ ।

[दयालदास कृत 'देसदर्पण' रचित से (सं ११) रचित है]

परिशिष्ट २

'बाँकीदास री ख्यात' में

पंवार वंश विवरण

॥ पवार ॥

(१) परमारां रै यजुरवेद माध्यंदिनी साखा वसिस्ट गोत्र, धाराय सचियाय दीप देवी माताजी पितर पीपळ री पूजा।

(२) वाकळ १ सचियाय २, सावण ३ कल्याण कुपर ४ कपार ५, ओग ६ मै इण देवी परमारां रा वंस में हुई।

(३) परमारांरी पैंतीस साख लिखत—परमार १ पावीस २ पमसी बोपा ३ धरिया ४ सुर ५ गोहलवा ६ सोढा ७ वहिया ८, सपाळ ९ मायी १० ढल ११ कलोळिया १२, सांखला १३ बाला १४ फागुणा १५, कलोटिया १६ टेभल १७ कुम्पा १८ माभा १९, पाइल २० ककला २१ जागर २२, पीथळिया २३ मामल २४ मोटसी २५ ऊमर २६ कालमुहा २७ दूठा २८, सूवड़ २९, पंच ३० रुर ३१ जोज ३२, पस ३३, गूण ३४ फला ३५।

(४) परमार राजा श्रीहरस जिणरा बडा बेटा मुंज छोटो बेटो सिंधुराज रा भोज।

(५) करनाटक रो राजा तैलपदेव जिण मृणालवती महल रा कहा सु घर घर भीख मंगाय मुंज नू सूली दियौ।

(६) परमार राजा मुंज मंत्रियां बरजतां गोदावरी उलांघि करणाटक रा राजा तैलपदेव माथे गयो । जग में तैलपदेव उण नु पकड़ लियो । भाखसी में दियो । कितराईक वरसां बहुत त्रास वधी रा कष्टासु आपरा सहर में घर-घर भीख मंगाय मुंज नु सूळी दियो ।

(७) रिख कपाट आदि गुफा में बैठो हुतो । राजा जाय कह्यो किंवाड़ खोलो । जद रिखि कह्यो—कुण है ? राजा कह्यो—हूं राजा छू । जद रिखि कह्यो—राजा तो इन्द्र है । जद भोज कह्या—किंवाड़ खोलो, हूं दाता छू । जद रिखि कह्यो—दाता तो करण हुवो । भोज कह्या—किंवाड़ खोलो हूं क्षत्रिय छू । जद रिखि कह्यो—क्षत्रिय तो अर्जुन हुवो । जद भोज कह्यो—खोलो किंवाड़ । रिख कह्यो—कुण छै ? भोज कह्यो मिनख छू जद रिखि कह्यो—मिनख तो धारापति । भोज है । सो हाथ लागा बिना खोलिया किंवाड़ खुल जासी । यूं हीज हुवो ।

(८) सांखसी नूं धारा रै कोटवाल कह्यो—अमुका कवि भोजराज पास आया सो पारस में थारै घरे उण कवि रा डेरो हुसी । तूं कवि नहीं जिण सूं थारा घर कविनूं दिरीजै । सांखसी राजा कनै जाय काव्य सुणाया—

करयामि वयामि यामि च

(९) आनूं रै धणी पाल्हण परमार सरब आनूं मांह भरत रो भरिया तीर्थंकर रा बींब हुता सु मसाय अपछे मर है । जोरिया भराया जिण पिण पाल्हण रा पाप सूं पाल्हण रै कोढ उपजिया जीरदप रा नांवा लिख भराय थापित कियो जद कोढ मिटिया ।

(१०) राव जगमलरो बेटो मेहाजळ जिण रा बटा री विगत—रायमल १ पचायण २ जैतमाल ३ कान्ह ४ करण ५ परबतसिंघ परबतसिंघ ६ रो सूजो ७ सूजा रो लखो ८, चीगाणे रहै।

(११) रायमलरा बटो फतैदास राणाजीरै चाकर।

(१२) पचायणरो किसनमण माळार रहै।

(१३) कान्हरै फतैसिंघ।

(१४) परमार मालदेरा सादूल जिण सादूल रै बटो रायसलण बटां री विगत,—जुझारसिंघ १ गजसिंघ २, अजबसिंघ ३ बखतसिंघ ४ भासरसिंघ ५, फतैसिंघ ६।

(१५) परमार भारमलसिंघ नू राठोड़ गिरधरसिंघ करमसिंघोत मारियो राणाजी री धरती म।

(१६) परमार सत्रसाल सादूलरो।

(१७) परमार कला मालदेभोत जिणरा बटां री विगत—रामचंद १ भानीराम गोइंददास ३ किसनदास ४ भगवानदास ५. पाटलदास ६ सामदास ७।

(१८) मालदेरै मद्य बटा कला।

(१९) मानीराम कमालदरा बटांरी विगत—नारायणदास १ नरहर २ धर्मसिंघ ३ मयाय नांह छै सूरसिंघ धाधांरा चाकर रहणम उगरूप मयाए नांह छै।

(२०) परमार भामचरण मालदेरा मऊन गया।

(२१) परमार सुवाणसिंघ माळदेरो। काम आयो कछवाहा मान सू भेड हुई जठै।

(२२) परमार रावत जैसो पचायण रो जिण रै टकुराई जेतरै हुवी। पुत्र किणरै ई हुवो नहीं।

(२३) परमार रावत करमसिंघ पचायणोत जेसा पछै पाट पायो संवत १६४२ रा सावण सुद १।

(२४) रणथभोर चहुवाण हमीरदेव साको कियो।

(२५) परमारांरी स्यात—रावत सांगो १ उणरो रावत महपो २, उणरो रावत रामो ३ उणरो रावत करमचंद ४ उणरो पचायण ५ राजा कछवाहा मानरो नानो।

(२६) संवत १५८५ विक्रमादीतजीसू चितोड़ पळटियो जद जेठ सुदी २ पचायण काम आयो।

(२७) पंचायण रो रावत मालदे पातस्याह सू लड़ राणा करमसिंघ रै वासियो आजपुर राणाजी पटै दियो।

(२८) सादूळ माळदेरो। सांगो ही माळदेरो जिण री बटी सूरजसिंघजी मराड़ आय परणिया। इणरी वोहती मासकवर बाई।

(२९) परमार सादूळ मालदेरा जिण भीनगर बसायो। पातसाह जहांगीर अजमेर रा सोवो इणनूं दियो। सीसोदिया भीम अमरसिंघोतरा कहसासू साहजादा खुरमरी फाम में वापरा अजमेर उमराव सरव भयान में पैसे। वांसरी करड़ी भयान कहावे। अयार जस्वा उपाड़।

(३०) परमार राजा कलसाह धारा नगरी सू उठ कमाऊ रो राजा लखमीचंद जिणरी चाकरी में रह्यो। लिखमीचंद लोहुघोगढ इणनू पटै दियो। पछै कलसाह बफरमावरदार होय कमाऊ री आधी धरती दबायी लोहुघोगढ अपणायो। गढ धार कहीजै।

(३१) कलसाहरा वंस में महीपतसाह हुवो जिणरी राणी करुणावती। जिण पातसाहरा उमराव नीजाबतखां पहाडां माथै आया तुरकांरा नाक काटिया जिण सू नकटी राणी कहाणी। करणावती महीपतसाह मर गयो हो बेटो छोटो हो जद करणावती फतैसिंघ ।

(३२) कलसाह सू चोथी पीढी सहजसाह हुवो जिण श्रीनगर बसायो।

(३३) कमाऊरो राजा गुसांई कहावै।

(३४) परमार राजा हुकुमराव उजीणसू उठ भोजपुर पटणा उरै कोस पचीस।

सांखला

(३५) परमार बाहडराव रै घरवासै अपछरा हुती जिणसू बेटा होय इणरै हुवा मा दान संख बजायो। जिणसू बाप रे बंसरा सांखला कहाणा।

(३६) परमार बाहडरैरा बेटा दाय—भोज मोहा दूजो सांखलो। वडो माय पे सगत हुई।

(३७) दीजी बरी देवी कल्याणकुवर अपछराजू हुई।

(३८) रावीसर सामकां खीमसी रायसलरो बेटो रहै। बड़िया आंगळ राज करै। बड़ियारा भमया गूजरगोत्र केसो है जिण बड़िया नै कहियो—थे कहो तो हूं आंगळ थमकै ठिकाणै बळाई सिखाऊं। बड़ियां कयो—थमको ठिकाणो तो घोड़ा घोड़ावारो सराहो है, अठै बळाइ मत सिखाव जद खीमसी सांखलासू कसो मिसियो। खीमसी कनै सूं बड़िया भराय आंगळ खीमसी रा अमल करायो। पछै केसो घोमड़ पसाव मिया। पोळपात्र थापियो। इणरी बेटी ऊमा गड गागुरण सीधी अमपळवास नू परणाई।

(३९) खीमसी रो कवरसी कवरसीरो जैसो जैसारो मूंजो मूंजारो ऊदो ऊदासू सांखला पवळा पड़िया।

॥ सोढा ॥

(४०) परमार भरापसावरो बेटो आसराव जिणरै बसरा सोढा पारकरा। दूजो बेटो भरापसावरो दूजणसल जिणरै बसरा सोढा घाटेचा।

(४१) पारकरा सोढा क्यांरै मोळपात मिहड़।

(४२) सुवरा में पुरखांरै गांव ७०० है। धणी परमार राणो पदवी राणा रतनसिंघ नूं बागड़ियै बहुधाणा ठरसिंघ मारियो। गमीरसिंघरा घेर में। परमार मदनसिंघ नूं राणो कियो।

(४३) पारकर राखो चवस गाड़ दरावरो बाघेलांरो भाणेज।

(४४) दूहा—पड़ प्रमाद्द पांचसौ, सोढा बीसा सात।
पळ्प तीवर पासवै इण रासी मझियात॥

(४५) बनाइयांनू मार पारकरा सोढा मूळी .बीधी ।

(४६) मूळी रै धसी रतन सोढै त्यां साथ विया धिधै परधव मीसयानै दीनो । पचास खास नगद पचास खास भरखो ।

(४७) ऊमरकोटरा सोढा पदवी राणा ज्यारी पारियावळी–राणो गागो धापारो पातो गांगारो, चन्द्रसेण पातारो महाराजा सूरज सिंघजी राणा चन्द्रसेणरै परणिया हुवा भोजराज चन्द्रसेणरो ईसरदास भोजराजरो संवत १५१० रा मावणा में भाटी रावळ सबळसिंघ ईसरदासने ऊमरकोट माहेसू काढियो सोढा जैसिंघ देनै ऊमरकोट राणो किन्यो ।

(४८) गांगो १ मानसिंघ २, जोधो ३, जैतसिंघदे ४, राणा गांगारो पड़पोतो जैसिंघदे ।

(४९) साढो रतनसी राणा गांगा री जिवारी वटी माटी रावळ मनोहरदास परणियो ।

(५०) मोढो करण राणा धांधारो सिणरो सींघो सींधारो भाणो भाणारो मनोहरदास–पातसाही पाखर ऊमरकोट परसोरया जठै रहै ।

(५१) गांवै धांपारै गळै सोढा तखी सरम ।

(५२) ऊमरकोट सोढा सुरताण ज्यांरो टिकायणो खावरो १ फागसियो २ ।

(५३) सोढा भोजराज ज्यांरा टिकायण तीन-कोळ १ सुहका २, टिमरी ३ मे ।

(५४) सोढा गांगवास म्हांरा ठिकाणा म्हार—राकरासो कोट १ चीपरो मुमूण २, बवरसिया ३।

(५५) सोढारां ठिकाणा पांच—सुरतस्य पबुल बार सोढा राम म्हांरा है।

(५६) एक दिन घोड़ा सावचीस भूमरकोट राखै सीमरा चोपड़ा मड़यान् दिया दियसू रीजी।

(५७) धीरवावरा सोढां री पीढी—कांचवा १ कांचवरो राम २, राम रो मनहर ३ मनहररो नोतो ४ नोतारा सतो ५, सतारो पीथो ६ पीथारो मोको ७ मोकारो पजो ८—जो इमै धीरवावरो सिरदार है।

(५८) मनहररो पांचो पांचारो भजो भजारो जहो जिया सताजी कर्नासू गोबी जी लिया विराजाव लिवी।

(५९) पछै मावाजी सताजी रै पोतै जहाजी नू जेहाजी रा बेटा दुरगजी हाथीजी नू मारियो धीरवाव। गाबिया रस मायनू लिया जगतसिंघ चतुबायनू मवड माने।

(६) पछै सोढो तजमालजी हारो। भतीज सहेव यह राखै सोढा बाग्नीजोरै सरखै गयो धीरवावसू निसरनै।

(६१) गोढ़ीजी इष्ट सोढांरै जियासू धीरवाव कोट में मद-मास बापरै नहीं। जेहा साढा रो बटा हाथो गुवै सूरजमल राणारी बटी परणिया हा। एक दिन सूरजमलरी बेटी पाखी मोनू म्हारै बाप बायियानू परणायी। उण दिन सू हाथी

मद्-मांस खावे आपरे महल में पधरायो । जेहाजी साथे गोगीजी चोपिया ने मोकजी खानपुर हुता छठेसूं पत्र दियो । पछे जेहाजी नूं मार मोकजी मीरखान कियो ।

मायला पवार

(६२) मायल पदमसी रो सजन बडो रजपूत हुवो । सीवच धापारी बहू देवडी झ्यारा घर मांहे पैठी । पछे कितरीक बरसां माहोमांह खड धापारे हाथ सजन रायो सजनरै हाथ धांधो रायो । देवड़ी सती हुई । हाथ बाढ ने धांधारै खड़में नाखियो ने बळी सजनरै साथै ।

(६३) सिवाणो सजनरा गिर छै । सजनरै रावळ चहुवाण सिवाणारो राज सातल जिणरो दाहितो । इण अलावदीन सूं मिल सिवाणो भिळायो । पातसाह सिवाणो इणनूं दियो । पछे रावळनूं पातसाह मरायो ।

(श्री नरोत्तमदास स्वामी सम्पादित एवं राजस्थान पुरातत्त्वान्वेषण मंदिर से प्रकाशित 'बांकीदास री ख्यात' पृष्ठ १३६–१४१ से उद्धृत)

यस्युर्व्वीभ प्रतीच्यां हिमगिरितनय सिद्ध[५]दम्पत्यसिद्धे
स्थानं च ज्ञानमाजामभिमतफलदोऽखर्व्वित सोऽबु दास्य ।
विश्वामित्रो वसिष्ठादहरत बलतो यत्र गां तत्प्रभावा-
द्यज्ञे वीराग्निकुण्डाद्रिपुबलनिधनं यश्चकारैक एव ॥[५॥]

मारयित्वा परान् धेनुमानिन्ये स ततो मुनि ।
उवाच परमारा——[६]र्थिवेन्द्रो भविष्यसि ॥[६॥]

तदन्ववाये ऽखिलयज्ञसंघ-
तृप्तामरोपाहृतकीर्त्तिरासीत् ।
उपेन्द्रराजो द्विजवर्गरत्नं
[७]सौर्यार्जितोत्तुङ्गनृपत्व [मा] न ॥[७॥]

तस्यान्वयेऽभूदरिराजकुम्भि-
कण्ठीरवो वीर्यवतां वरिष्ठः ।
श्री वैरसिंहश्चतुरम्बुराशि-
पारेषु जगतस्तम्भप्रशस्ति ॥[८॥]

तस्माद् बभूव प्रभुपादिपमौलिमाला-
रत्नप्रभाष्परिरञ्जितपादपीठ ।
श्री सीयक करपाणवरोर्म्मिमग्न-
शत्रुव्रजो विजयिनां धुरि भूमिपाल ॥[९॥]

तस्मादवन्तितरुणीनयनारविन्द-
भास्वानभूत् करकृपाणमरीचि वीरः ।
श्रीवाक्पति [९]सततमसानुकरविस्फुरणा
गमासमुद्रसहितानि पिबन्ति यस्य ॥[१०॥]

---

५ पाठो–चापल   ६ पाठो–परमारास्यं पार्थिवेंद्रो   ७ पाठो–र्थानां
८ पाठो–प्रभु   ९. पाठो–यत्सपक्षा ।

जातस्तस्माद् वैरिसिंहोन्मनाम्ना
    लोको ब्रूते [चच्चट] स्वामिनं च ।
शत्रोर्वर्गं धारयासेर्निहत्य
    श्रीमद्राज्य सूचितायेन राज्ञा ॥[११॥]

तस्मादभूदरिनरे[१] स्वरसपसेवा–
    गज्जद्गजेन्द्ररवसुन्दरतूर्यनादः ।
श्री हर्षदेव इति खोट्टिगदेवलक्ष्मी
    जग्राह यो युधि नगादसमप्रतापः ॥[१२॥]

पुत्रस्तस्य [११]विभूषिताखिलधरामागो गुणैकास्पदं
    [१२]शौर्याक्रान्तसमस्तशत्रु [१३]विमताधिम्याधविरोधकः[१४]।
कल्पान्तोज्ज्वलकालितस्कराकसनमज्जावशा [स्ता] गम-
    श्रीमद्वाक्पतिराजदेव इति च सद्भिः सदा कीर्त्यते ॥[१३॥]

कर्णाटलाटकेरलचोलशिरोरत्नरागिपदकमल
    यश्च प्रणयिगणार्थितदाता कल्पद्रुमप्रख्यः ॥[१४॥]

युवराज विजित्याजौ हत्वा तद्वाहिनीपतीम् ।
    [१५]खड्गमूर्ध्वीकृतयेन त्रिपुर्यां विजिगीषुणा ॥[१५॥]

तस्यानुजो निर्जितहूणराज –
    श्रीसिन्धुराजो विजयार्जितश्री ।
श्रीभोजराजोजनि येन रत्नं
    नरोत्तमाकपदत्दद्वितीयं ॥[१६॥]

---

१ पाठ–नरेश्वर ११ पाठे–विभूषिता १२ पाठे–शौर्या
१३-१४ पाठे–भूमिमताधिम्याम्मितोधक १५ पाठे–खड्गमूर्ध्वीकृतो ।

परिशिष्ट २

जगदेव पंवार की वात्त

राजा उदीयादीत पवार धार नगरी राज्य करै। राजा रै दोइ रांणी नै गर्भ रह्यो। जिणरै हेके दिने पहली रांणी रै पुत्र हुवौ। राजा महल मांहि पौढीयो थो, जिकै समईयै वधाइदार आयो। आइ सिराहणै ऊभो रह्यो जिणरै बीजी रांणी रै पुत्र हुवो उणै रो वधाईदार पगांथीयां ऊभो रह्यो। जितरै राजा जागीयो तितरै पगांथीयां वाळै वधाई दीन्ही। ताहरां सिरांहणियां वाळै कह्यो—"हूं पहली आयो थो। तद राजा कह्यो— 'जु जिणै पहली वधाई दी तिणरो टीकायत' तेरो नांम रिणधवळ। पछै वधाई दीन्ही तेरो नाम जगदेव, रावत रा टीको।

जितरा एक वर्ष हुआ। राजा उदयादीत वैकुंठ पधारीया। राजा री टीको रिणधवळ नु दीयो, नै जगदेव ऊठी चालीयो। जगदेव गुजरात गयो। जाइनै सिध राजा जैसिंघदे रै वास रह्यो। राजा जगदेव री घणी आदर कीयो। पछै चाकर दे नै पास राखीयो। पछै रिजक दीयो। जगदेव दरबार आवै सु राजा रो मुजरो करै—चोथु पहर। ताहरां प्रभाति रै मुजरै राजा रै आवै ताहरा राजा नु वेदन देखै पण पूछै नहीं।

इसु करतां एक दिन राजा सिकार चढीयो थो। जगदेव नै राजा एकान्त एकठा हुआ। ताहरां जगदेव राजा नै पूछीयो—

"महाराजा ! रात्रि, सवार रै दरबार पधारो, ताहरां वलस पधारो सु किसे वासते ? ताहरां राजा कहै नहीं । ताहरां जगदेव हठ कीयो । ताहरां राजा कह्यो—"जगदेव बात मत पूछे ।" जगदेव कहै—"बात कहो । ताहरां राजा कह्यो—"जु म्हारै महल में कोई देवता आवै प्रहर १ रहै, तिणरै हूं निसत हुइ रहां ।"

ताहरां जगदेव कह्यो—"परमेश्वर भली करिसी'

तद जगदेव रात्रि चोकस रहै । तद एक दिन जगदेव राजा रै बाग में आइ बैठो । पाहणे रै ऊपर घोड़ा रा पग ऊपर ऊभा दीठा । इसड़ा पैर घोड़े ऊपर रा नहीं । तद माली नै तेड़ि पूछीयो—रे ! अठे कोई घोड़ो ही आवै छै ।

तद माली कह्यो— मनैं इणै बात री खबरि पड़ै नहीं ।

तद रात्रि जगदेव उठै ही ज रह्यो । रात्रि आधी वितीत हुई ताहरे एक असवार आकास सु ऊतरीयो । वणां पैरां ऊपर घोड़ो आइ ऊभो रह्यो । ताहरां जगदेव विचारियो— 'महल में आवै सु ओही ज ।" तद ऊवे री वासो कीयो । वो महल मांहै गयो । तद जगदेव एकै ओलहै ऊभो रह्यो । प्रहर एक महल मांहि रह्यो पाछो फिरिया । तद जगदेव ऊवे सु वाथां हुओ । घड़ी ४ खसीया । तद रात्रि तूटन लागी । तद वो बलहीन हुवो । जगदेव ऊवे नु पछाड़ी नीचे दीयो ।

हिवे राजा रै महल में नहीं आवु तू मोनैं छोडि । तोनु पिण बस्तर सखरी देइस । घोड़ो नै खड़ग तोनु दीया । आप

छे नै काढियो। जगदेव घोड़ो सवग स नै डेरै आव्यो। मन में खुस्याल हुवो।

राजा रै मुजरै गयो।—राजा सु' हकीकत कही। राजा खुस्याल हुवो जगदेव डर आव्यो। रात्रि राजा रै महल में मरण आव्यो सु नायो। बीजै दिन राजा मोहिल तेड़िनै कह्यो—"थे नाळेर ले जावो। जाइ जगदेव नु परणाविस्यां। मोहिल नाळेर ले जाइनै जगदेव नु बधायो। जगदेव नाळेर झालि लीयो। साहो जावाइ जगदेव नु परणायो। राजा घणा मांना कीया। चोथे हिंसे री धरती जगदेव सु दीन्ही। आधी गादी जगदेव बैसै आधी गादी राजा बैसै। इये भांत सु सुख सु राज करै छै।

एकदा प्रस्तावि राजा सधिपदे दरबार जाडि सभा सहित राजा दरबार बैठो छै। तिसै समइयै एक भाटियाणी आइ—उघाड़ै माथै छूटा केस आइनै राजा नु डावै हाथ सु आसीस दीन्ही। राजा विकराल रूप देखिनै अचरिज हुवो।

तिसै समइयै मै जगदेव पंवार दरबार आव्यो। आइनै राजा सु' मुजरो कीयो। राजा घणो आदर देनै गादी बैसारियो। ताहरां जगदेव सु कंकाली देखि नै माथो ढांकीयो। जीवणा हाथ सु आसिख दीन्ही। ताहरां राजा अचरिज हुवो पूछीयो—"कंकाली! दिवाड़ माथो ढांकीयो सु कासु इतरी वार माथो उघाड़ो हुवा नै हिवै माथै कपड़ो लियो।

ताहरां कंकाली बोली—"महाराजा ! इतरी वार दरबार मांहे मरद कोइ बैठो न हुतो तै माथै कपड़ो न लीयो। वा हिवै

दरबार माहे भरव भायो दातार आयो, ते माथे कपड़ो सीवी।
आज संसार माहे जगदेव पंमार नर छै दातार छै।

कवित्त—कलयुगी कंनकी दिस दक्षिण हुं चल्ली।
गुजरात जयसिंह माइ तव-सिधराज मिली॥
चलंपि कुली छतीस मध साहथ नहीं पारह।
अधक अनोपम राइ वास फल पंचव वारह॥
सरग सपता चलै भगज मम्या मग्गमर।
कंकस करे मसप सुणि मोहि समीपम सिवाइ पर॥१॥
उत्तर दक्षिण पुम्ब देस पश्चिम सपत्ती।
नर नरिंद भुव पत्त किय अरण आवती॥
जहां राइ जेसिंघ कुली छतीस अथंनी।
सिर कमध नह दीयो पाम कर आसिक दिनी॥
तब जगदेव पिक्खो नयण सिर कमल आसिक दीयो।
शाहिये हाथ पसाव दिया तब सु राय विसमाद कीयो॥२॥
त्रिया चरित न कभई अरथन हरस रसह।
कुण आरस्स सिर दीयो इम पूछे परमार॥३॥
सब कोऊ ससमथ है, आपण पे आभास।
थे पाय मद्दसा गया जसम हूचत विध पास॥४॥
सब कोऊ ससमथ है पिण पावै मुह मिठ्ठ।
दान खग जगदेव सम सत्री अवर न दिट्ठ॥५॥
मान हो राय मध्धर कर्ता जपे बवण असस।
जा आपे जगदेव सुदि सम पाइण दू दम॥६॥

तीन भुवन जस विसतरे, सरग मृत पाताल ।
परमर सक ऐसो भयो सिर दीजे कमल ॥७॥

कवित्त—स्त्री वाक्यं

आयो गयवर गुडीय अवल पटकूल विवह पर ।
दीजे गाम कोठार, रमण सोलह कंचण भर ॥
दीजे गऊ कुल महिष भट्ट भाखी बहु मतीय ।
पूत त्रिय दासी न दास बहु भांति निरंतर ॥
दीजंत दान हैंमर चमर धनुप खाग महं मंडणो ।
जगदेव त्रिया इम उचरे सीस न दीजे आपणो ॥८॥

जगदेव वाक्य

भांपू गजवर एक राय दी पच समप्पे ।
पच तुरी प॰ दान राय पंचासक अप्पे ॥
हीरा मांणिक लाख देत बुधि भम न नरे ।
क्यो भू पती दिये राय बहु भाई समरे ॥
दीजंत दान अमर चमर धनुप खग्गा महि मंडणो ।
जगदेव कहे सुन्दरि निसुणी सीस न दुवे आपणो ॥९॥
जिन्ह जीवन कारणे कष्ट दुष्करहि तपी ।
जिन्ह जीवन कारणे भाग भोग्य रस भपी ॥
जिन्ह जीवन कारणे भाग श्रीमत महीपर ।
जिन्ह जीवन कारण मिली गुणवती सुन्दरि ॥
जीव के काज गढ़ संचीये धन जोबन रूपम कसी ।
जगदेव जीव अति दाहिलो मम आपिस हसहस हसी ॥१०॥

द्विती (घ) स्त्री चातुर्यं

तू, पंवार कुल मरद, तू म चाखा मजवण समरत्थ ।
अप्पे तू मगायो मैज दीन्हो तुम्ह वत्थ ॥
कमाली दीनवे सीस अप्यो मुगट मत्थ ।
सुणो राय खेसिघ करै कर सत्त अप्प मन ॥
मरदुर माण्य तन भगवे येण अनोपम चित्तधर ।
जगदेव कंकाली उपरे सीस दीयतो विलंब न कर ॥११॥

धड़ा भाट सिर दियो तास तै अमृत तुठी ।
अधर वग्ग आप्म्यी सभा सब अनाहद दिठी ॥
अपन कर कपियो किच खरख तै दिन्हो ।
सुणे मोहव दातार, इसो इत किणही न किओ ॥
पमार भोज विक्रम पछी भ्रम जास माहीं कर वसे ।
अजरिव पह जगदेव की घड़ विण सिर हहह हसे ॥१४॥

सभासीस सचयौं, हाड गजब उपरीयो ।
पिस राइ गया भाखि माउ मंदिर ऊवरीयो ॥
तबही ध्यास कराल बोल बोले विण वादह ।
देण कही पोगुणो देह दिओ जप वारह ॥
जसिंह कहै कमल सुणि, माहिल्यदि से ससर्सो ।
पिख्या ज सीस जगदव का भाग राव जसिंह गो ॥१३॥

तप न मान आवे तप न फल धवधर मसे ।
अरजन मरे म बांध करन पारथ्थीज घसे ॥

मथा ढांबे पेद धू किम रहे मरती।
ईस कुपथ दद मयो पवन जग रहै बहतो॥
कंकाली भहि निसि बीनपै सर समेर आखे दीयो।
पमार नफरो म करै सीस दान जगदे दीयी ॥१४॥

॥ कुंडलीयो ॥

सिर दिन्है पर भासना दरुयौ सखी मपूत।
जप मक्ति परिहारकी कह्यो नरो प्रब॥
कह्यौ नरपै प्रब पूह पर नारि सहोवर।
जिण जित्यौ पासरूक सिद्ध जसिंह समो नर॥
सुजस रह्यौ संसार मैं सच्च दिन्हो केलासखो।
इण जगदेव पमार सीस दिन्हो मह भासयो॥१५॥

॥ गाथा ॥

मगदेवो जगदाता जगदेवो जगत गुरु।
जगदेवो जगद्भाता मगदेवो जगम्मित्र ॥१६॥

कवित्त

कर न कोप कमल भायस माही पयठी।
तजवि भन जस सहित रंग देवास पयठी॥
कहि सपन दस पच सिह सकि नमन करीयो।
पाम पिग्य हरि सिद्ध सच पमार न टरीया॥
यो बाध भूप करस मकर कमसी दिनम कथा।
जगदेव कीयो मनाम कर, पुहवि प्रताप जग जस रह्यो ॥१७॥

पाछुरो कंकाली जगदेव रै सिर ऊपरि धड़ रै मेल्हीयो। जगदेव उठि ऊभो हुवो कंकाली आसीस दीन्ही। आसीस देनै कंकाली उठि गई लोक देखता रह्या। जगदेव संसार मांहे जसी हुवो॥ (प्रथम जैन ग्रंथालय की प्रति से)

['राजस्थानी वार्ता' में प्रकाशित जगदेव पवार की बात में पत्र सं ८२ २४ कुछ पाठभेद के साथ है। २-४ अन्य भी हैं जो इसमें नहीं हैं।]

परिशिष्ट ३

परमारों की उत्पत्ति

१ परमारों की उत्पत्ति की कथाओं में एक विशेषता है। प्रायः सभी ने उन्हें अग्निवंशी माना है और प्रायः सभी ने वसिष्ठ ऋषि के अग्निकुण्ड को उनके जन्मस्थान के रूप में निर्दिष्ट किया है। महाराजाधिराज भोज परमार के पिता श्री सिन्धुराज 'नवसाहसांक' के दरबारी कवि पद्मगुप्त ने इस विषय का अच्छा वर्णन किया है। उसने लिखा है— 'ब्रह्माण्ड के मण्डप के स्तम्भ के समान भीमकाय अर्बुद पर्वत है।⋯⋯उस स्थान पर नीवार मूल ईंधन कुशा ये सब यथेच्छ मिल सकते हैं। वहां इक्ष्वाकुओं के पुरोहित (वसिष्ठ) ने तप किया। जिस प्रकार कार्त्तवीर्य ने जमदग्नि की कामधेनु का हरण किया था उसी प्रकार विश्वामित्र ने एक बार वसिष्ठ की धेनु का हरण किया। बड़-बड़ आंसुओं की धार से जिसका वल्कल भीग गया था उस अरुन्धती ने अपने पति की अमर्ष रूपी अग्नि के लिये ईंधन का काम किया। विकट ज्वालाओं के कारण जटिल अग्नि में अथर्व विद्या का जानने वालों में अग्रणी (वसिष्ठ) ने समन्त्र आहुति दी। उसी क्षण स्वर्ण के कवच से आवृत धनुष किरीट और सान पर चढ़े बाणों से युक्त एक पुरुष अग्नि से निकला। जिस प्रकार नृप कार्तवीर्य द्वारा हरण की हुई दिन-भी की

लाया है, इसी प्रकार यह विश्वामित्र द्वारा हृत मुनि की गाय को दूर से ले आया और उसने मुनि से सार्थक 'परमार' नाम प्राप्त किया[1]।

२ परमारों की उत्पत्ति का यह सब से प्राचीन स्पष्ट उल्लेख है। बसन्तगढ़ उदयपुर नागपुर अर्थूणा हाथल देलवाड़ा पाटनारायण अचलेश्वर आदि के शिलालेखों में संक्षेप या विस्तार से यही कथा वर्तमान है। अकबरनामा एवं आइने अकबरी आदि के प्रख्यात लेखक अबुल फज़ल ने भी परमारों को अग्निवंशी माना है। उसके कथनानुसार इलाही सम्वत से दो हजार तीन सौ पचास वर्ष पूर्व अर्थात् वि० सं० ८१८ में महाबाहु नाम के किसी ऋषि ने अग्नि मन्दिर में सर्व प्रथम अग्नि होम आरम्भ किया। बौद्धों ने इस कार्य से असन्तुष्ट होकर राजा द्वारा अग्निहोम बन्द करवा दिया। जनता अपने उद्धार के लिये भगवान से प्रार्थना करने लगी। इससे प्रसन्न होकर भगवान ने अग्नि मन्दिर से एक मानव योद्धा को उत्पन्न किया जिसने शीघ्र ही तमाम विघ्नों को दूर कर अग्नि पूजा की फिर स्थापना की[2]।

३ पृथ्वीराज रासो के अनेक रूपान्तरों में भी प्रायः यही कथा उपस्थित है। रासो के नागरी प्रचारिणी वाले बृहद् रूप की कथा का कुछ अंश आइने अकबरी से और कुछ प्राचीन शिलालेखों

१ नवसाहसाङ्क चरित सर्ग ११ श्लोक ४६–७१
२ दूसरी जिल्द पृ २१४–२ (जैरट का अंग्रेज़ी अनुवाद)

से मेल खाता है। इस नवीन रूपवाली कथा की उत्पत्ति पन्द्रहवीं या सोलहवीं शताब्दी से पूर्व नहीं रखी जा सकती[३]। कथा अति संक्षिप्त रूप में निम्नलिखित है —

विश्वामित्र अगस्त्य वसिष्ठ आदि अनेक ऋषियों ने आबू पर्वत पर यज्ञ आरम्भ किया। इससे क्रुद्ध होकर यज्ञद्रोही दैत्यों ने विषमूत्रादि की वर्षा कर उसे दूषित किया। इस विघ्न को दूर करने के लिये वसिष्ठ ने अग्निकुण्ड से पडिहार परमार सोलंकी और चौहान—इन चार योद्धाओं को उत्पन्न किया। इनमें से तीन प्रथम यज्ञ की रक्षा में सफल न हुए।

४ जैसा ऊपर निर्दिष्ट हो चुका है, परमारों की उत्पत्ति की इन सब कथाओं में दो बातें प्रायः सर्वत्र वर्तमान हैं। चाहे 'परमार' की उत्पत्ति का कारण विश्वामित्र की अनीति रही हो या दैत्यों और बौद्धों की ये अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुए और उनके उत्पादक ऋषि वसिष्ठ थे[४]। चौहानों प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति की कथाओं में वह सामञ्जस्य नहीं मिलता। शिलालेख एक बात कहते हैं तो बरदे भाट और चारण कुछ और ही। एक प्रमाण से हम प्रतिहारों को रघुवंशी तो दूसरे से अग्निवंशी सिद्ध कर सकते हैं। किन्तु परमारों के विषय में कम

---

३ पारनापल्ला के सं. १३४४ के शिलालेख तक कथा का यह रूप नहीं था जो मलखानसाहचरित में वर्तमान है। यज्ञ का आरम्भ और उसका बौद्धों या दैत्यों द्वारा दूषण पीछे की जोड़ तोड़ है।

४ केवल प्राकृत 'चन्दरी' ने ऋषि का नाम महबाहु दिया है।

इस परशुराम के समय से अभी अब तक परमारों को अग्नि-
ो मानते रहे हैं।

५. तो क्या वास्तव में परमार अग्निवंशी थे ? हम सूर्यवंशी
र चन्द्रवंशी क्षत्रिय मानने के लिये तैयार हैं, तो अग्निवंशी
त्रिय क्यों नहीं ? सूर्य और चन्द्र से वंश चल सकता है तो
ग्नि से क्यों नहीं ? प्रश्न संगत है। इस परम्परा के आधार
क्षत्रियों को सौर चान्द्र या आग्नेय मानते हैं, किन्तु यह
म्परा प्राचीन होनी चाहिये। यह महाभारत-काल तक नहीं तो
म से कम बुद्ध और महावीर के समय तक तो पहुँचे। सौर
र चान्द्र वंशों की परम्पराएं और उनका परम्परागत ऐतिह्य
र्याप्त प्राचीन है। अग्निवंशी क्षत्रियों की उत्पत्ति की कथा इसकी
ताब्दी से पूर्व नहीं पहुँचती।

६ वास्तव में परमारोत्पत्ति की यह कथा रामायण के एक
त्तर स्तर के आधार पर खड़ी कर दी गई है। बालकाण्ड के
अध्याय ५४ और ५५ में विश्वामित्र ने वसिष्ठ की कामधेनु का
हरण किया। इससे क्रुद्ध होकर वसिष्ठ की आज्ञा से कामधेनु ने
अपने विण्मूत्रादि से पह्लवों किरातों शकों यवनों, यवनों
काम्बोजों हारीतों और कम्बोजों को उत्पन्न किया। इन्होंने
विश्वामित्र की सेना को नष्ट कर दिया। कामधेनु फिर वसिष्ठ
के पास पहुँच गई[१]। परवर्ती कथाओं में भी वसिष्ठ कामधेनु

---

१. अधिक विवेचन के लिये राजस्थानी भाग १ अंक २ पृ १९-२२ पर
लेखक का निबन्ध पढ़े।

और विश्वामित्र वर्तमान हैं, किन्तु बर्बरों यवनों शकों आदि का स्थान परमारों को मिल चुका है। इनकी उत्पत्ति भी कामधेनु के विण्मूत्र से नहीं वसिष्ठ के मन्त्रपूत अग्निकुण्ड से है। ऐतिहासिक सम्भवतः इस नवीन कल्पना की प्रशंसा कर सके किन्तु उधार लेकर परिष्कृत की हुई इस कथा को सत्य मानने के लिये निश्चित ही वह विवश नहीं है। परमारों को या किसी अन्य जाति को अग्निवंशी मानने के लिये ऐतिहासिक को इससे सशक्त सुदृढ एवं प्राचीन प्रमाण चाहिये।

७. किन्तु इन कथाओं को दुराधार मानते ही—याद रहे सर्वथा निराधार नहीं—प्रश्न फिर वहीं पहुँचता है जहाँ से हमने विषय को आरम्भ किया था यानि ये परमार थे कौन ? वाट्सन फॉर्बेस कैम्पबेल देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर आदि विद्वानों ने इन्हें गूजरों की शाखा माना है। उनका विश्वास है कि ईसवी सम्वत् की पांचवीं या छठी शताब्दी में इन्होंने भारतवर्ष में प्रवेश किया। वाट्सन के कथनानुसार परमारों की चावड़ा शाखा के लिये गूर्जर शब्द का प्रयोग किया गया है[१]। फॉर्बेस ने भी चावड़ा राजा के लिये 'गूर्जर-राज' शब्द के प्रयोग का निर्देश किया है[२]। डाक्टर भण्डारकर ने प्रतिहारों को गूर्जर मान कर बाकी सब अग्निवंशियों को गूर्जर मानना समुचित समझा है[३]। किन्तु ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। पुराने ग्रन्थों में गूर्जर शब्द प्रायः गुजरात या गुजराती का पर्यायवाची है। अतः गूर्जरराज

१ देखें धीरेन्द्रचन्द्र गांगुली का 'परमारों का इतिहास' ७ वहीं ८ वहीं

का अर्थ मात्र गूजरों का राजा नहीं अपितु गूर्जर देश या गुजरदेश के वासियों का राजा है। चावड़ परमार होते हुए भी गूजर देश के स्वामी होने के कारण गूर्जरराज कहला सकते थे। पुनश्च यह भी स्मरण रहे कि चावड़ परमार थे या नहीं इसमें भी कुछ सन्देह है[९]। पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के कलचुरी संवत ४९० (ई० स० ७३९) के दानपत्र से स्पष्ट है कि गूजर और चावड़ दो भिन्न जातियां थीं।[१०] पड़िहारों को भी इसी प्रकार गूजर मानना भ्रान्तिमात्र है[११] और उन्हें किसी तरह गूजर मान भी लिया जाय तो उनसे सर्वथा भिन्न परमार जाति को गूजर मानने के लिये हम किस तरह विवश हैं?

८. डॉ० धीरेन्द्रचन्द्र गंगुली की धारणा है कि परमार मान्यखेट के राष्ट्रकूटों के वंशज हैं। वे परमारों को न विदेशी समझते हैं और न गूजर, किन्तु वे इतना अवश्य समझते हैं कि परमार उत्तर भारतीय नहीं अपितु दक्षिणी थे और उनका उद्गम मान्यखेट के राजवंश से हुआ है। प्रमाणस्वरूप उन्होंने हरसोल के निम्नलिखित अभिलेख का निर्देश किया है[१२] —

परमभट्टारक-महाराजाधिराजपरमेश्वर—

श्रीमदमोघवर्षदेवपादानुध्यात-परमभट्टारक—

---

९. एतद्विषयक उदाहरणों के लिये 'पूना ओरिएन्टलिस्ट' (Poona Orientalist) में मेरा 'प्रतिहारों की उत्पत्ति' नामक लेख देखें।

१० ओझा—राजपूताने का इतिहास भा. १ पृ. १९१।

११ टिप्पणी ९ में निर्दिष्ट लेख देखें।

१२ परमारों का इतिहास पृ. ९।

महाराजाधिराजपरमेश्वर-श्रीमदमोघवर्षदेव–
पृथ्वीवल्लभ-श्रीवल्लभ नरेन्द्रपादानां ।
तस्मिन् कुले कल्मषमोषदक्षे जातः प्रतापाग्निहतारिचक्रः
वप्पैयराजेति नृपः प्रसिद्धस्तस्मात्सुतोभूदनु वैरिसिंह (ह,) ॥१॥

दृप्तारिवनितावक्त्रपद्मबिम्बकसंकदा ।
न धौता यस्य कीर्त्यापि हरहासावदातया ॥२॥
दुर्व्वारवैरिभूपालरणरंगैकनायकः ।
नृपः श्रीसीयकस्तस्मात्कुलकल्पद्रुमोभवत् ॥३॥

प्रथम समस्त पद के बाद के विराम को हम निरर्थक समझें तो वि सं० १०२६ का यह लेख अवश्य सिद्ध करेगा कि परमार राष्ट्रकूटों के वंशज थे। किन्तु ऐसा मानने में महान आपत्ति यही है कि इस दानपत्र के दाता सीयक के पुत्र मुञ्ज के दरबारी कवि पद्मगुप्त ने नवसाहसाङ्कचरित में परमारों की उत्पत्ति का स्पष्टतः इससे सर्वथा भिन्न वर्णन किया है और आबू को परमारों का आदि स्थान माना है, मान्यखेट का नहीं। यह संभव नहीं हो सकता कि परमार बीस या पचीस वर्ष के अन्तर में ही राष्ट्रकूटों से अपनी उत्पत्ति को भूल गए हों और इस विषय में भूल कोई सामान्य व्यक्ति नहीं अपितु एक ऐसा कवि करे जिसका राजवंश से अनेक वर्षों से घनिष्ट सम्बन्ध हो और जो स्वयं राजा की आज्ञा से उसके वंश और चरित का वर्णन कर रहा हो।

१ अभिलेख की शैली भी कुछ विचित्र है। किसी कुल के

वर्णन से पूर्व प्रायः दाता के पूर्वपुरुषों का वर्णन रहता है[11]। अमोघवर्ष और अकालवर्ष चाहे वे अमोघवर्ष प्रथम और कृष्ण द्वितीय हों या अमोघवर्ष द्वितीय और कृष्ण तृतीय वप्पयराज के पूर्व पुरुष होने का दावा नहीं कर सकते। उनमें से एक का समय वही है जो वप्पयराज का और दूसरा वप्पयराज का भी नहीं भीमक का समकालीन था।

१० अभिलेख का कुछ भाग सम्भवतः उत्कीर्ण न हो सका है। पूर्ण अभिलेख के उदाहरण की तौर पर हम मिहिरभोज का सन् ८६४ का अभिलेख ले सकते हैं। इसका आरम्भ "परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीरामभद्रपादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीमद्भोजदेवपादानामभि प्रवर्धमान-कल्याणविजयराज्ये इन शब्दों से होता है। हरसोल के अभिलेख में यदि "अभिप्रवर्धमान कल्याणविजयराज्ये" शब्द न छूट गये होते तो यह अवश्य भोज के लेख के समान होता।

११ उदाहरण के लिए रघुवंश का वर्णन लें। इसका आरम्भ रघुवंश के पूर्वपुरुष से होता है। बीच के राजाओं के इतिहास को छोड़ने के लिए कालिदास ने कहा है —

जिस प्रकार इस "तदन्वये शुद्धिमति" [illegible] दिलीप इति राजेन्दु-रिन्दुः क्षीरनिधाविव श्लोक के 'तदन्वये शुद्धिमति' का सम्बन्ध पूर्ववर्ती राजा वैवस्वत से है उसी प्रकार हरसोल के अभिलेख के 'तस्मिन् कुले अमोघवर्षोऽभवत्' का सम्बन्ध परमार वंश के किसी पूर्व पुरुष से होना चाहिये। किन्तु कृष्ण द्वितीय वप्पयराज का समकालीन और कृष्ण तृतीय उसके बाद में था।

इन शब्दों के बाद सम्भवतः एक आध पंक्ति आदि-परमार या किसी प्राचीन परमार राजा के विषय में देकर अभिलेख के "तस्मिन् कुले कल्मषमोषदक्षे" श्लोक का आरम्भ हुआ होगा।

११ एक दूसरी संभावना भी हो सकती है। वाकाटकों की महाराज्ञी प्रभावती गुप्ता सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पुत्री थी। उसके अभिलेखों में पहिले गुप्तों की और उसके बाद वाकाटकों की वंशावली है। सम्भवतः सीयक द्वितीय किसी राष्ट्रकूट राजकुमारी का पुत्र हो। इसलिये उसके हरसोल के अभिलेख का आरम्भ राष्ट्रकूट राजाओं के नामों से किया गया है। अभिलेख के सम्पादकद्वय श्री के एन दीक्षित और श्री बी विरम्भकर द्वारा सूचित यह संभावना भी असंगत नहीं कही जा सकती यद्यपि इसमें भी यह मानना पड़ेगा कि अभिलेख का कुछ भाग उत्कीर्ण होने से रह गया है।

१२. अतः निष्कर्ष यही है कि हरसोल के अभिलेख के आधार पर परमारों को राष्ट्रकूट मानना भी उचित नहीं है। वे न अग्निवंशी थे न गूर्जर और न राष्ट्रकूट। किन्तु वे सम्मान्य राजपुत्र अवश्य थे। उनके वैवाहिक सम्बन्ध बड़-बड़े राजघरानों में हुए थे। उनकी जाति के विषय में सबसे प्राचीन उल्लेख मुञ्ज के दरबार के पंडित हलायुध का है। उसने मुञ्ज के लिये 'ब्रह्मक्षत्रकुलीन' शब्द का प्रयोग किया है। इससे स्पष्ट है कि उस समय परमार ब्रह्मक्षत्र माने जाते थे। सम्भवतः ब्रह्मक्षत्र' शब्द से वे जातियाँ गर्भित होती थीं जिनमें ब्राह्मणों

भार क्षत्रियों दोनों के गुण विद्यमान हों। परमार विद्वान थे और वीर भी। अतः ब्रह्मक्षत्र शब्द उनके लिये उपयुक्त था। यह भी सम्भव है कि प्रारम्भ में परमार ब्राह्मण हों धर्म को संकट में देख कर शुंग सातवाहन कादम्ब पल्लव आदि ब्राह्मण कुलों की भांति उन्होंने भी तलवार संभाली और समय पाकर क्षत्रिय माने जाने लगे। गुहिलों और चौहानों के विषय में भी अनेक विद्वानों ने कुछ ऐसी सम्भावना की है। ऊहापोह इससे अधिक नहीं बढ़ सकता और न उसके अधिक बढ़ने की आवश्यकता ही है। जिस जाति ने वाक्पति और भोज उदयादित्य एवं जगदेव जैसे त्रिभिषवीरों को उत्पन्न किया वह वास्तव में महान् थी, उसका महत्व अत्युच था। चाहे परमार प्रारम्भतः ब्राह्मण रहे हों या क्षत्रिय वशिष्ठी या उत्तर भारतीय व राजपुत्रों में तब भी श्रेष्ठ थे और अब भी श्रेष्ठ हैं। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वंश अब भी गौरवान्वित है।

[राजस्थान भारती – भाग ३ – अंक २ में प्रकाशित डा. दशरथ शर्मा का लेख]

परिशिष्ट ४

राजा भोज

मालवे का परमार राज्य मुञ्ज के समय अपने उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। उसने गुहिलों को पराजित कर आहाड़ का नष्ट कर डाला। गूर्जरेश मूलराज उससे हार कर राजस्थान के मरु भाग में अपनी जान बचाने के लिये भटका। सहस्रार्जुन का वंशज युवराज द्वितीय अपनी राजधानी त्रिपुरी को उससे न बचा सका। केरल और चोल देश तक उसकी धाक थी। लाट और मारवाड़ के सामन्त उसके सामने नतमस्तक थे। किन्तु तैलप के हाथों उसकी पराजय और मृत्यु के बाद मालवे के भाग्य-नक्षत्र का प्रकाश कुछ धीमा पड़ गया। उसके छोटे भाई सिन्धुराज ने अपने राज्य के आरम्भ में कुछ सफलता अवश्य प्राप्त की किन्तु यह चिरस्थायिनी न हुई। सन् १ १० से पूर्व वह गुजरात के राजा चामुण्डराज चौलुक्य से बुरी तरह से हारा। कुछ विद्वानों का तो यह भी अनुमान है कि वह इस युद्ध में धाराशायी हुआ। फलतः जब भोज सिंहासन पर बैठा उस समय मालवे की स्थिति कुछ विशेष अच्छी न रही होगी। भोज की आयु छोटी थी। शत्रु राज्य के चारों ओर मंडरा रहे थे। राजा को बालक और निर्बल समझ कर सामन्त विद्रोह के लिये उद्यत हो रहे थे।

जिन राज्यों ने मुञ्ज और सिन्धुराज से हार खाई थी वे सिन्धुराज की असामयिक मृत्यु को प्रतिशोध का अच्छा अवसर समझते थे। ऐसी स्थिति में राज्य का केवल सम्हाल ही नहीं उसकी ख्याति और शक्ति की भी वृद्धि करना भोज जैसे महान् व्यक्ति का ही कार्य था। मेरुतुंग ने उसका राज्यकाल पचपन वर्ष माना है। किन्तु वास्तव में सम्भवतः उसने पैंतालीस वर्ष ही राज्य किया। निम्नलिखित अभिलेखों और उल्लेखों में उसके राज्य के कुछ सम्वत् हैं —

१	मोडासा अभिलेख	वि स	१०६७
२	महुडी अभिलेख		१०७४
३	बांसवाड़ा ,,	,,	१०७६
४	बेतमा	,,	१ ७६
५	उज्जैन	,,	१ ७८
६	देपालपुर ,,		१०७९
७	सरस्वती मूर्ति का अभिलेख		१ ९१
८	राजमृगाङ्ककरण	शक स	९६४=वि स १०९९
९	तिलकवाड़ा अभिलेख	वि	११ ३
१	कल्वन	,,	११०४
११	दशबलीय चिन्तामणि सारणिका	शक	९७७=वि सं १११२

इनमें अन्तिम उल्लेख से निश्चित है कि भोज वि स १११२ तक जीवित था। उसी साल में उसके उत्तराधिकारी जयसिंह ने मान्धाता ताम्रपत्रों में लिखित दान दिया। इसलिये

यही उसका निधन सवत् भी है। अभिषेक का समय वि सं १०६७ के बाद में नहीं रखा जा सकता। भोज को हम उस राजकुमारी का पुत्र मानें जिससे सिन्धुराज ने अपने राज्यारोहण के बाद विवाह किया था तो वि स १ ६७ मे भी यह अल्पवयस्क ही रहा होगा। उससे दस वर्ष पूर्व तो उसके राज्य सभालने का प्रश्न ही नहीं उठता। सिन्धुराज की मृत्यु कुछ बड़ी उम्र म न हुई थी। अत किसी दूसरी रानी की सन्तान होने पर भी उसकी आयु वि स ११६७ में कुछ अधिक न रही होगी।

भोज ने गद्दी पर बैठने पर कुछ वर्ष राज्य की स्थिति सुधारने में ही व्यतीत किये होंगे। उसके मोडासा के अभिलेख से सिद्ध है कि मोडासे के आसपास के गुजरात के प्रदेश को उसने हाथ से न निकलने दिया। यह उसके दादा हर्ष सीयक की बपौती थी और इसी पर अधिकार के लिये सम्भवत सिन्धुराज के समय सघर्ष हुआ हो। भोज ने अपनी बपौती की रक्षा कर परमारों की पराजय को भी विजय में बदल दिया। इसके लगभग सात साल के बाद उसने महुडी (वि स १०७८) में उल्लिखित दान दिये। किन्तु उस समय तक सम्भवत भोज का ध्यान अपने राज्य के सुदृढ़ीकरण और सुरक्षा पर ही लगा हुआ। अभिलेख म उसके लिये परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर आदि पदवियां प्रयुक्त हैं जो उसके स्वातन्त्र्य और उच्चाभिलाषा की सूचक हैं। किन्तु इन पहले दो शिलालेखों म भोज की किसी विजय का उल्लेख नहीं है।

किन्तु इसके कुछ समय बाद ही स्थिति बदली। परमार राज्य के शत्रुओं से बदला लेने की अग्नि उसके हृदय में सदा धधकती रही होगी। किन्तु गुजरात पर न आक्रमण कर उसने सर्व प्रथम मुञ्जराज की हत्या करने वाले कल्याण के चालुक्यों पर आक्रमण करना ही उचित समझा। कल्याण-राज्य के विरोधी कुछ अन्य राज्यों ने भी सम्भवतः युद्ध में साथ दिया। दोनों पक्ष इस समय में अपनी विजय का उल्लेख करते हैं। बेलगवे शिलालेख ने कल्याण राज चालुक्य जयसिंह को भोज रूपी कमल के लिये चन्द्र से उपमित किया है। जिस प्रकार दिन में विकसित होने वाली कमलिनी रात्रि के समय कुम्हला जाती है, उसी तरह भोज की कीर्ति जयसिंह-चन्द्र के उदित होने पर विनष्ट हो गई थी (इण्डियन एण्टिक्वेरी ५ पृ० १७)। किन्तु भोज के शिलालेखों से तो यही प्रतीत होता है कि विजयश्री उसी के हाथ रही थी चाहे उसे इतनी सफलता न मिली हो जितनी उसे अभीष्ट थी और संघर्ष भी कुछ समय तक चलता रहा हो। माघ शु० ५, वि० सं० १०७६ (३ जनवरी सन् १०२० ई०) के बांसवाड़ा दानपत्र में लिखा है कि कोंकण विजय के पर्व पर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर भोजदेव ने वटपद्रक में सौ निवर्तन भूमि भाइल नाम के ब्राह्मण को दी। इसी प्रकार कोंकण विजय महोत्सव के पर्व पर स्थानेश्वर-विनिर्गत पण्डित [illegible] को भोज ने नालतडाग नाम का गांव दिया जो सम्भवतः बेटा जिले का नास नाम का गांव है। इस दान का उल्लेख भोज के बेटमा दानपत्र में है जिसकी तिथि भाद्रपद

शु० पूर्णिमा सम्वत् १०७६ (सितम्बर १०२ सन्) है। इन दानपत्रों की भाषा और तिथि दोनों ही विश्वसनीय है। यदि दानों म एक ही घटना का निर्देश होता तो एक पर्व माघ और दूसरा भाद्रपद म न पड़ता। किन्तु दानपत्रों की भाषा से ही स्पष्ट है कि ये घटनाए भिभिन्न थीं। पहले दानपत्र म केवल 'कोकणविजय' का उल्लेख है जिससे प्रतीत होता है कि भोज न कोंकण में कोई विजय प्राप्त की। इस उल्लेख का हम चालुक्य जयसिंह क बेलगांवे शिलालेख से मिला कर पढ़ें तो यह भी प्रतीत होता है कि वह अपनी विजय के बाद कुछ विशेष अवसर न पा सका चालुक्य सेना न उसकी गति रोक दी और अपनी इस सफलता का ही जयसिंह न बेलगांव क शिलालेख म अङ्कित करवाया[१]। किन्तु कुछ समय बाद सम्भवत और परमार सैन्य कोंकण म जा पहुँची जयसिंह द्वारा और भोज ने केवल कोंकण विजय ही नहीं कोकण विजयपर्व का पर्व मनाया। उसन विजय भी प्राप्त की और कोंकण को भी हस्तगत कर लिया। जयसिंह के शक सवत् ९४९ (वि सं० १०८१) के मिरज दानपत्र मे सप्त कोंकणों के अभीश्वरों को जीत कर उसके अन्यत्र आक्रमण करने का उल्लेख है जिससे यह भी सिद्ध है कि कोंकण का राज्य सन् १०२४ ई० (वि० स० १०८१) से पूर्व जयसिंह के हाथ से निकल चुका था। वि स ११ ५ में परमार सामन्त यशोवर्मा ने नासिक जिले में कुछ दान दिए। नासिक कोंकण

१ चालुक्य विजय का उल्लेख पुलैगुर अभिलेख में भी है। भोज की सैन्य का पतिरोध गोदावरी-गंगा (गोदावरी) के किनारे हुआ।

की सीमा से सटा है। अतः यह अनुमान भी सम्भवतः असङ्गत न हो कि स ११ ५ तक यह विजित प्रदेश भोज के अधिकार में बना रहा।

भोज के निजी अन्य दानपत्रों से उसके जीवन पर कुछ विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। किन्तु उदयपुर प्रशस्ति आदि में उसका पर्याप्त यशोगान है। अर्जुन वर्मा की धार प्रशस्ति ने उसे सार्वभौम की उपाधि दी है और उसे त्रिपुरी के अधीश्वर गांगेयदेव कलचुरि को हराने का श्रेय दिया है। उदयपुर प्रशस्ति ने भोज को पृथु से उपमित किया है और लिखा है कि कैलास से मलय तक और अस्ताचल से उदयाचल तक की पृथ्वी उसके अधिकार में थी। अन्य शब्दों में इस प्रशस्ति ने भी भोज को दिग्विजयी सार्वभौम राजा माना है। उसकी विशेष विजयों में चेदीश्वर इन्द्ररथ तोग्गल भीम कर्णाटेश लाटेश गूर्जरेश और तुरुष्क की पराजय का इसने विशेष रूप से उल्लेख समझा है।

अर्जुन वर्मा की धार प्रशस्ति से यह स्पष्ट है कि भोज द्वारा पराजित चेदिदेश का राजा गांगेयदेव कलचुरि था जिसने विक्रम सम्वत १०७२ से १०८८ तक राज्य किया। दोनों राजा प्रायः एक साथ ही गद्दी पर बैठे थे। दोनों ही कल्याणी के चालुक्यों के शत्रु थे। इसलिये आरम्भ में दोनों राजा मित्र थे और भोज ने जब वि स १०७६ के लगभग जयसिंह पर आक्रमण किया तो गांगेय ने उसका साथ दिया। गोदावरी के किनारे अपनी गति के रुद्ध होने पर परमार सैन्य ने सम्भवतः

किसी अन्य मार्ग से बढ़ कर कोंकण पर अधिकार कर लिया। किन्तु चेदीश के हाथ शायद पराजय के अतिरिक्त कुछ न लगा। फलतः यह मैत्री शीघ्र ही शत्रुत्व में बदल गई। भोज ने गाङ्गेय पर आक्रमण किया। भोज पराजित हुआ और सम्भवतः अपने राज्य का कुछ भाग खो बैठा।[२]

इन्द्ररथ सम्भवतः आदिनगर का राजा था। अपनी उत्तरी अभियान में चोलराज अधिराजेन्द्र के दण्डनाथ ने उसे पराजित कर कैद किया था। यह घटना वि स १०२१ से पूर्व हुई। भोज ने अपने राज्य के आरम्भ में ही गाङ्गेयदेव कलचुरि से मिल कर शायद इस पर आक्रमण किया हो। अन्यथा शत्रु राज्यों में से गुजर कर आदिनगर तक पहुँचना दुष्कर था।

तोग्गल की पहिचान कठिन है। कुछ विद्वान् इसे भोज द्वारा पराजित तुरुष्क समझते हैं। किन्तु हमारे मतानुसार तो उदयपुर प्रशस्ति में वर्णित सभी परस्पर विभिन्न हैं। तोग्गल भी किसी भारतीय भू भाग का राजा रहा होगा।

भीम गुजरात का चालुक्य राजा भीमदेव प्रथम है जिसने अपनी चतुर्दिक् विजयों से चौलुक्यों के राज्य का प्रसार किया। भीम और भोज दोनों ही उच्चाभिलाषी थे। प्राचीन वैमनस्य भी दोनों पड़ोसियों में वर्तमान था ही। किन्तु भोज कुछ अधिक

---

२ गाङ्गेय पर भोज की विजय का उल्लेख पारिजातमञ्जरी नाटिका की लम्बी में भी है। कलचुरि अभिलेख में बिना नाम के परदेशी की पराजय का निर्देश है।

शक्तिशाली था। मेरुतुङ्ग के कथनानुसार भोज के सेनापति दिगम्बर-सम्प्रदायानुयायी कुलचन्द्र ने भीम की अनुपस्थिति में चौलुक्यों की राजधानी अणहिलपत्तन को लूटा और मंत्री साद् से जय पत्र लिखा कर वापिस आया। आबू के राजा धन्धुक ने जब भीम का आधिपत्य स्वीकार न किया तो भोज ने उसे धारा में रखा। अन्यत्र भी इनका कुछ न कुछ संघर्ष हुआ होगा जिसमें भीम की पराजय सम्भव है।

कर्णाट राजा जयसिंह के विरुद्ध भोज की कोंकण में विजय और गोदावरी पर एक पराजय का उल्लेख हम कर चुके हैं। लाटेश शायद कीर्तिराज का पुत्र वत्सराज जिसका राज्यकाल शक सं ९४०=वि० सं० १०७५ के बाद आता है, या वत्सराज का पुत्र त्रिभुवनपाल हो जिसका नाममात्र त्रिविक्रमपाल के शक सम्वत् ९९९ के ताम्रपत्र में मिला है। उल्लेख की रीति से प्रतीत होता है कि उसने राज्य नहीं किया।

गूर्जरेश को अनेक विद्वान् गुजरात के अधिपति भीमदेव के अर्थ में लेते हैं। यह अर्थ असम्भव नहीं है। किन्तु एक के बाद दूसरा नाम गिनाने से यह सम्भावना भी हो सकती है कि यह कान्यकुब्ज का अधीश्वर राज्यपाल हो। महोब के एक शिलालेख के अनुसार भोज और कलचुरिचन्द्र (गाङ्गेय) चन्देलराज विद्याधर की सेवा में प्रस्तुत रहते थे। महामहोपाध्याय डा० ओझाजी ने इससे यह अनुमान किया है कि गाङ्गेयदेव और भोज ने विद्याधर चन्देल को गूर्जर-प्रतिहार राजा राज्यपाल के

विरुद्ध सहायता दी होगी। अनुमान असंगत प्रतीत नहीं होता। सहायता को भी नौकरी का रूप देना प्रशस्तिकारों के लिये कोई नयी बात नहीं है।

भोज का समसामयिक तुरुष्क राजा महमूद गजनवी था जिसने एक के बाद अनेक आक्रमण भारत पर किये। प्रसिद्ध यात्री अल्बेरूनी ने भी धारेश्वर भोज का नाम दिया था जिससे भोज की तत्कालीन ख्याति का अनुमान किया जा सकता है। वि स १ ०८१ में जब महमूद सोमनाथ के विरुद्ध चढ़ा उसका सामना करने की हिम्मत बहुत कम राजाओं में हुई। लोद्रवा चिक्लोदर माता और सत्यपुर आदि स्थानों में मन्दिरों को भ्रष्ट करता हुआ जब वह गुजरात पहुँचा तो भीमदेव प्रथम भाग कर कथा दुर्ग में घुस गया। मुसलमानी सेना यहीं उसने सोमनाथ के मन्दिर को तोड़ा और सब लूट का सामान वापस लेकर जाने की तैयारी की। किन्तु यह कार्य सरल न था। मार्ग उसके अचानक आक्रमण का सामना न कर सका था किन्तु अब सर्वत्र कोपाग्नि प्रज्वलित थी। किताब जैनुल-अखबार ने इसी तथ्य को अपने ढंग से इन शब्दों में कहा है "उस स्थान महमूद वापस मुड़ा और कारण यह था कि हिन्दुओं का राजा परमदेव रास्ते में था और अमीर (महमूद) को डर था कि कहीं यह महान् विजय बिगड़ ना जाए। वह सीधे रास्ते से नहीं लौटा। एक रास्ता दिखाने वाले को लेकर यह मन्सूरा और सिन्धू के किनारे होता हुआ मुल्तान गया। दो सौ वर्ष के बाद इसी घटना का उल्लेख करते हुए इब्न उल अथीर ने भी यही बात लिखी है।

यह परमदेव कौन था। जैसा श्री कन्हैयालाल गुरी ने बताया है, इस परमदेव को फरिश्ता के आधार पर भीमदेव समझना ठीक न होगा। भीम की ताकत उस समय तक कुछ विशेष न थी। वह तो अपने प्राणों को बचाने के लिये कंथकोट में जा छिपा था। परमदेव को इसी तरह आबू का कोई परमार राजा मानना भी ठीक नहीं है। वह तो और भी अधिक शक्तिरहित था। तो क्या यह सम्भव नहीं है कि भोज देव को ही वाक्तनुक अलबरुनी ने परमदेव में परिवर्तित कर दिया हो? शायद उसी की प्रबल वाहिनी से डर कर सीधे रास्ते को छोड़ कर महमूद मरुस्थल में जा घुसा हो। विषय अभी गवेष्य है, निस्संदिग्ध नहीं।

भोज की अनेक अन्य विजयों का भी हम तत्कालीन शिला लेखों और साहित्य की पुस्तकों से कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मुञ्ज ने गुहिलों को हरा कर उनकी राजधानी आघाट को नष्ट किया था। शायद उसी ने या भोज ने चित्रकूट को जीता। इस दुर्ग पर भोज द्वारा बनवाए हुए त्रिभुवन नारायण के शिव मन्दिर का जिसे अब जनता अदबदजी (अद्भुतजी) या मोकलजी का मन्दिर कहती है, महाराणा मोकल ने सम्वत् १४८५ में जीर्णोद्धार करवाया था। शाकम्भरी पर भी भोज ने आक्रमण किया। यहां का चौहान राजा वीर्यराम भोज से युद्ध करता हुआ मारा गया [पृथ्वीराज विजय ५ ६७]। कच्छपघात विक्रमसिंह के दूबकुण्ड के शिलालेख में लिखा है कि अभिमन्यु ने रथों और अश्वों के चालन में जो चातुर्य

प्रदर्शित किया उसकी भी भोजदेव ने भी प्रशंसा की। इस कथन का शायद यह अभिप्राय हो सकता है कि अभिमन्यु ने किसी युद्ध में भोज की सेना की सहायता की थी और यह तभी सम्भव हो सकता है जब हम यह मानें कि दूबकुण्ड के राज्य ने भी भोज की अधीनता स्वीकार की थी। ग्वालियर को भी हस्तगत करने का सम्भवतः भोज ने प्रयत्न किया। किन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। ग्वालियर के अधिपति कीर्तिराज कच्छपघात ने यह दावा किया है कि उसने मालवे के असंख्य सैन्य को जीता था। कीर्तिराज के समय [लगभग १०५२ १ ६२ वि स] को ध्यान में रखते हुए हम भोज को ही कीर्तिराज का विरोधी मान सकते हैं। नाडोल के चौहानों के विरुद्ध भी इसी प्रकार भोज को विशेष सफलता न मिली। उसने भोज के सेनापति साढ़ को मारा और शाकम्भरी परमारों से छुटकारा।

भोज के राज्य का अधिकांश भाग पर्याप्त बड़ा पूर्ण रहा। किन्तु अन्तिम दिनों में स्थिति बदलने लगी। संवत् १०८० के बाद गाङ्गेयदेव कलचुरि ने अपनी शक्ति में काफी वृद्धि की थी। उसका पुत्र कर्ण (वि सं० १०६८–११३२) । और भी अधिक योग्य निकला। भोज इस समय चारों ओर से शत्रुओं से घिरा था। गुजरात के चालुक्य कल्याण के चालुक्य शाकम्भरी और नाडोल के चौहान मेदपाट के गुहिल ग्वालियर के कच्छपघात—ये सभी इस समय भोज के शत्रु बन बैठे थे। भोज ने अनेक विद्वानों को अपना मित्र बनाया किन्तु राजाओं में

किसी को वह अपना मित्र न रख सका। उसके ऐश्वर्य की कथाएँ ही उसकी शत्रु बन बैठी होंगी। तब कवि लोग कहते—

भो भोः श्री भोजदेव प्रणत विनम्र शत्रव क्षात्रवर्गा
प्राणत्राणाय नोचेत् न भवति भवतां क्वाप्यरण्यं शरण्यम्

(शार्ङ्गधरपद्धति)

(अरे विरोधी शत्रुवर्ग तुम विनय से श्री भोजदेव की शरण ग्रहण करो। अन्यथा तुम्हें अवश्य ही वन की शरण लेनी पड़ेगी)[1]

तो यह विरोधाग्नि और अधिक बढ़ती होगी। किन्तु भोज से अकेले पार पाना दुष्कर था। उसे हराने का केवल मात्र उपाय शत्रुओं की संहति थी। कल्चुरिराज कर्ण के नेतृत्व में भोज के शत्रुओं ने इसी उपाय का अवलम्बन किया।

धारा पर शत्रुओं के आक्रमण का पूर्ण विवरण अप्राप्य है। किन्तु हेमचन्द्र सूरि और मेरुतुङ्ग के कथन से यह निश्चित है कि भोज पर दुतर्फा आक्रमण हुआ पूर्व से चेदिराज कर्ण का और पश्चिम से गुजरात के अधीश्वर भीमदेव प्रथम का। अन्य छोटे-मोटे राजाओं ने उनका साथ दिया होगा। भाग्यवशात् भोज इस समय रुग्ण था। बहुत दिनों से भी

---

१ शत्रुओं का नामोल्लेख-सहित तिरस्कार इस श्लोक में है —

चौडः क्रोडं पयोधेर्विशति निवसते रन्ध्रमध्येऽपि चेदिः
कर्णाटः पट्टबन्धं न भजति भजते गूर्जरो निर्झराणि ।
वैरिक्षोणीभृतोऽर्थं त्रिदिवपति भुजः [illegible]
धीमत्तात[illegible] भोजः ॥

यह बात शत्रुओं से न छिप सकी। स्थिति वास्तव में गम्भीर थी। मेरुतुंग ने एक कवि के शब्दों में ठीक ही वर्णन किया है—

अम्बयफलं सुपक्कं विवटं सिढिलं समुब्भओ पवणो ।
साहा मल्हणसीला न याणिमो कज्जपरिणामो ॥

"आम का फल सुपक्व है, वृन्त शिथिल है और पवन अत्यन्त वेगयुक्त। शाखाएं सुमर्ष रही हैं (?)। न जाने क्या परिणाम होगा।

भोजदेव की मृत्यु होते ही परिणाम निश्चित हो गया। कुछ सम्भवतः भीम से पूर्व धारा पहुँचा और कुछ समय के लिये परस्पर झगड़ते परमारों के हाथों से धारा निकल गई। अनेक राजाओं से वैभव की प्राप्ति होने पर भी बिल्हण जैसे महाकवियों को उसके बाद यही दुःख रह गया कि वे भोज के समय धारा न पहुँचे।

भोज का भाग्यसूर्य इस तरह अस्ताचल पहुँचा। किन्तु उसकी महत्ता और गुणगरिमा को भारत न कभी भूला और न भूल सकता है। वह श्री और सरस्वती दोनों का निवास-स्थान था। विद्वानों ने उससे रक्षा प्राप्त की साहित्य-सरस्वती उस समय वरा–विद्-स्नाता होकर वह निकली। स्वयं भोज का उसके अध्ययत्न में रचित कुछ ग्रन्थ निम्नलिखित हैं —

१ योग सूत्र की टीका राजमार्तण्ड—यों तो सूत्रों पर व्यास का भाष्य और उस पर वाचस्पति मिश्र की तत्त्ववैशारदी टीका

प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। किन्तु राजमार्तण्ड टीका संक्षिप्त होती हुई भी गम्भीरार्थक है। इसके पढ़ने में शाङ्करी शैली का सा आनन्द आता है। अनेक शब्दग्रन्थियाँ और ज्ञानग्रन्थियाँ भी स्वतः सुलझती हैं।

२ *भोजराजीय शब्दानुशासन*—भोज के शब्दानुशासन ने भी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। राजमार्तण्ड टीका में इसका निर्देश होने से यह निश्चित है कि इस ग्रन्थ की रचना राजमार्तण्ड से पूर्व हुई थी। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

३ *राजमृगाङ्क (वैद्यक)*—वैद्यक पर भोज द्वारा रचित राजमृगाङ्क नाम के ग्रन्थ का उल्लेख भी राजमार्तण्ड में है।

४ *राजमृगाङ्क (ज्योतिष)*—इसी प्रकार ज्योतिष पर भी भोज ने राजमृगाङ्क नाम के ग्रन्थ की रचना की। इसका रचना-काल शक सं ९६४-वि० सं १०९९ है। योगसूत्रीय टीका राजमार्तण्ड में इसका निर्देशन होने से उसका और उसमें निर्दिष्ट ग्रन्थों का रचना काल सं० १०९९ से पूर्व का है।

५. *राजमार्तण्ड (धर्मशास्त्र)*—राजमार्तण्ड के नाम से धर्मशास्त्र पर भी भोज ने एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की जिसका परवर्ती अनेक धर्म-ग्रन्थों में उल्लेख है। इनसे प्रतीत होता है कि कुछ सामाजिक विषयों पर भोज का मत प्राचीन लेखकों से अधिक उदार था।

६ *राजमार्तण्ड (वैद्यक)*

७. *युक्तिनिबन्ध*—यह भोज का एक और धर्मशास्त्रीय ग्रंथ था। इसका प्राचीन निबन्धों में उल्लेख है।

८. *सरस्वतीकण्ठाभरण*—यह साहित्यालोचन का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ के अध्ययन से पाठक जान सकते हैं कि भोज का अध्ययन कितना व्यापक था। साहित्यालोचन के प्रसङ्ग में भोज ने इस ज्ञान का अच्छा उपयोग किया है।

९. *शृंगारप्रकाश*—साहित्यालोचन पर भोज का दूसरा स्वतंत्र ग्रंथ शृंगारप्रकाश है। इसमें भोज ने शृंगार को मुख्य और अन्य रसों को गौण माना है।

१०. *तत्त्वप्रकाश*—इस नाम का शैव सिद्धान्त का एक ग्रंथ त्रिवेन्द्रम ग्रंथमाला में प्रकाशित है।

११. *समरांगण सूत्रधार*—वास्तुकला का यह अद्भुत ग्रंथ है। मूर्तिनिर्माण आदि अनेक अन्य विषयों पर इस ग्रंथ से अच्छा प्रकाश मिलता है। ग्रंथ गायकवाड़ प्राच्य ग्रंथमाला में प्रकाशित है।

१२. *युक्तिकल्पतरु*—यह राजनीति विषयक ग्रंथ है। इसमें दूत कोष, कृषिकर्म बल यात्रा सन्धि विग्रह, नगर निर्माण वास्तु-प्रवेश छत्र ध्वज, पद्मरागादिपरीक्षा अस्त्र शस्त्रपरीक्षा नौकालक्षण आदि विषयों पर विचार किया गया है। पुस्तक कलकत्ता प्राच्य ग्रंथमाला में प्रकाशित है।

१३. *शृंगारमञ्जरी*—यह गद्य का कथा ग्रंथ है।

इनके अतिरिक्त इनसे लगभग त्रिगुण अन्य ग्रंथ हैं जिन्हें बहुत से विद्वान भोज की कृतियाँ मानते हैं। इनके सम्यक् अध्ययन से ही ज्ञात हो सकता है कि ये भोज और भोज के विद्वानों की रचना हैं या नहीं। हमने ऊपर की सूचि में उन्हीं ग्रंथों को ही लिया है जो या तो हमने स्वयं देखे और पढ़े हैं या जिनके ग्रंथकर्तृत्व के विषय में सन्देह के लिये विशेष अवकाश नहीं है।

ऐसे विद्वान राजा की सभा विद्वानों से सुशोभित हुई तो आश्चर्य ही क्या है। जैन कवि धनपाल ने उसकी प्रशंसा करते हुए तिलकमंजरी की प्रस्तावना में लिखा है—

> निःशेषवाङ्मयविदोपि जिनागमोक्ताः
> श्रोतुं कथाः समुपजातकुतूहलस्य ।
> तस्यावदातचरितस्य विनोदहेतो ।
> राज्ञः स्फुटाद्भुतरसा रचिता कथेयम् ।

भोज सब वाङ्मय का ज्ञाता था। तो भी उसकी यह इच्छा हुई कि वह जिनागम में कही हुई कथाएं सुने। उस स्वच्छचरित वाले राजा के विनोद के लिये यह स्वच्छ अद्भुत रस से युक्त कथा रची गई है।

धनपाल जाति से ब्राह्मण था किन्तु अध्ययनादि के बाद अपने भाई शोभन की प्रेरणा से उसने जैन धर्म स्वीकार किया था। मुञ्ज ने उसे सरस्वती की पदवी दी थी और भोज के लिये वह संमान्य सखा, दरबार और कविवन्धु रहा होगा। प्रबन्ध-

चिन्तामणि में भोज और धनपाल के विषय की अनेक कथायें हैं जिनम स अधिकतर सर्वथा कल्पनाप्रसूत हैं।

धनपाल ने अपने भाइ शोभन की रचना तीर्थंकरस्तुति पर वृत्ति लिखी। उसी के कहने से शान्तिसूरि नाम के जैनाचार्य धारा आए। अपनी वादशक्ति के कारण आचार्य ने भोज राज से *वादिवेताल' नाम की उपाधि प्राप्त की। शान्तिसूरि ने* तिलकमञ्जरी का शोधन और उत्तराध्ययनसूत्र टीका अगविद्या धर्मशास्त्र आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की।

आनन्दपुर के निवासी उवटाचार्य ने भोज के समय वाज सनेयी संहिता पर मन्त्रभाष्य लिखा। निपुण कवि भी भोज की सभा का शृंगार था। नवोदय का रचयिता शायद इसकी सभा में रहा हो। प्रबन्धचिन्तामणिकार मेरुतुंग ने माघ, धनपाल वररुचि आदि कवियों और कवयित्री शीता पण्डिता का इसकी सभा म रखा है। शार्ङ्गधर ने शीला भट्टारिका को उसकी सभा की कवयित्री माना है जो सम्भवतः मेरुतुंग की शीता पण्डिता से भिन्न है। माघ और वररुचि का समय भोज से पर्याप्त पूर्व का है।

वास्तव में भोज की सभा के पण्डितों और कवियों का विशेष वर्णन देना असम्भव है। किन्तु उनकी कृतियां भोज के ग्रन्थों में सम्मिलित होकर अमर हैं। जहां तक साहित्य से सम्बन्ध है, भोज का अर्थ प्रायशः भोज विद्वन्मण्डल किया जा सकता है। भोज इसकी नाभि और उसकी सभा के विद्वान् उसकी अर और नेमि थे।

अपने वास्तुग्रंथों के अनुसार उसने अनेक प्रासाद बनवाए। धारा में उसने सरस्वती के मन्दिर की स्थापना की जो नाम और अर्थ दोनों में ही सरस्वती-मन्दिर था। दिग्दिगन्त से आने वाले विद्वानों की यह कसौटी भारतीय विद्याओं का भण्डार और सिद्धि क्षेत्र था। अब यह सरस्वती प्रतिमा ब्रिटिश म्यूज़ियम लन्दन में पहुँच चुकी है। सरस्वती-सदन के स्थान पर कमालमौला नाम की मस्जिद खड़ी है। "हा हन्त भवितव्यतहरी।" इसी मन्दिर के पास एक कूप को जो सम्भवतः सरस्वती-कूप के नाम से प्रसिद्ध था अब भी लोग अक्कल कुइ कहते हैं। अपनी जय के स्मारक के लिये सम्भवतः भोज ने ही जो जयस्तम्भ खड़ा किया था वह लाट मस्जिद के रूप में है। श्री त्रिभुवननारायण के मन्दिर के विषय में हम ऊपर कुछ कह चुके हैं। केदारेश्वर रामेश्वर सोमनाथ सुण्डीर काल अनल आदि के विशाल प्रासाद भी भोज ने बनवाए थे। कश्मीर में कपटेश्वर के मन्दिर के निकट उसने तालाब खुदवाए जिसके अवशेष अब तक वर्तमान हैं। भोपाल अब भी भोज की याद दिलाता है। उसी राज्य में भोजसागर नाम की झील भोज ने खुदवाई जिसका क्षेत्रफल २५० वर्ग मील था। इसके बीच का द्वीप ही सम्भवतः वर्तमान दीप नाम का ग्राम है।

भोज ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी के मध्यकाल में भारत का प्रतीक था। गुजरात का कुछ भाग समस्त मालवा राजस्थान के अनेक भाग, मध्यभारत के कुछ क्षेत्र और महाराष्ट्र का कुछ अंश उसके साम्राज्य में सम्मिलित था। यह भारत का अमी

बड़ा भूभाग था। किन्तु उसका सांस्कृतिक साम्राज्य इससे कहीं बड़ा था। कैलास से मलय और पश्चिमाब्धि से पूर्वाब्धि तक साहित्यिक क्षेत्र में उसकी सार्वभौमता सर्वमान्य थी। वदान्यता के लिये दो ही उपमान थे भूपराज कर्ण और भोज और साहित्यप्रियता एवं गुणग्राहकता के लिये केवल मालवराज भोज। समय पाकर भोज के प्रति यह अनुराग कम नहीं हुआ कुछ बढ़ा ही है। उदयपुर प्रशस्ति में भोज के लिये लिखा है –

> साधित विहित दत्त ज्ञात तद्यन्न केनचित्।
> किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ॥१८॥

'उसने उसका साधन और विधान किया उसने वह दिया और उसका ज्ञान प्राप्त किया जो दूसरों के सामर्थ्य के बाहर था। कविराज भोज की इससे अधिक क्या प्रशंसा की जाए।

भोज कालीन कुछ व्यक्ति शायद इससे सहमत न होते। किन्तु हम इस अत्युक्ति में सत्य को देखते हैं। भोज ने वास्तव में वह श्री सरस्वती और शक्ति का सामञ्जस्य उपस्थित किया था जो किसी देश या काल में सुलभ नहीं है।

[डा० दशरथ शर्मा]

परिशिष्ट ५

त्रिविध-वीर जगद्देव परमार*

१ जगद्देव परमार का नाम समस्त भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। इसकी अपूर्व कीर्त्ति से मालव, राजस्थान, गुजरात दक्षिणादि प्रदेश अब तक सुरभित हैं। यह अनेक विचित्र कथाओं का नायक है। अनेक कवियों ने अनेक भाषाओं में इसके गुण का गान किया है, किन्तु यह गुणगान इस सीमा तक पहुँच चुका है कि गुण को ही हम द्रव्य समझ बैठे हैं। इस ऊपरी लीपापोती को दूर कर वास्तविक जगद्देव परमार को राजस्थान-भारती के पाठकों के सम्मुख रखना इस निबन्ध का ध्येय है।

२ कथाओं के अनुसार मालव के राजा उदयादित्य परमार के दो रानियाँ थीं, एक वाघेली और दूसरी सोलंकिनी। वाघेली का पुत्र था रणधवल और सोलंकिनी का जगद्देव। वाघेली राजा की प्रेमपात्र थी, इसलिए उसी का पुत्र रणधवल युवराज नियत हुआ और मनस्वी कुंवर जगद्देव को मालवा छोड़ना पड़ा। उसने पाटन जाकर गुजरराज सिद्धराज के यहाँ नौकरी की। विधिविधान से ही दुष्ट सिद्धराज की आयु पूरी हो चुकी थी

---

* राजस्थान भारती—भाग ८ अंक ४ से पुनर्मुद्रित लेखक श्री दशरथ शर्मा।

किन्तु जगदेव ने अपना, अपनी स्त्री का और अपने दो पुत्रों के मस्तक योगिनी को चढ़ा कर सिद्धराज के लिये १८ वर्ष की आयु और प्राप्त की। इस अपूर्व स्वामिभक्ति से प्रसन्न हो कर योगिनियों ने जगदेव को सकुटुम्ब पुनर्जीवित किया। सिद्धराज ने ये सब बातें छिपे-छिप देखी थीं। उसने भरे दरबार में जगदेव की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसका वेतनादि से मान बढ़ाया। कुछ दिन बाद सिद्धराज ने मालवे पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। जगदेव को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने सिद्धराज की नौकरी को तिलाञ्जलि दी और वापस मालवे पहुँचा। उदयादित्य ने उसका स्वागत किया। रणधवल के स्थान पर अब जगदेव युवराज नियत हुआ। उदयादित्य की मृत्यु के बाद जगदेव गद्दी पर बैठा। उसने बावन वर्ष राज्य किया।[1]

२ मैं यही कथा अनेक रूप-रूपान्तरों में पढ़ और सुन चुका हूँ। किन्तु इसे सर्वथा विश्वसनीय मानना भूल है। जगदेव अवश्य उदयादित्य का पुत्र था। उसकी वीरता और दानशीलता भी निस्सन्दिग्ध है। पृथ्वीराजविजय से यह भी सिद्ध है कि उदयादित्य परमार और कर्ण चौलुक्य समसामयिक राजा थे[2]। इसलिये कर्ण चौलुक्य के पुत्र सिद्धराज जयसिंह के समय

१ देखें फार्बस रचित रासमाला भाग प्रथम पृ १७७ (एच जी रालिन्सन द्वारा सम्पादित संस्करण) राजस्थानी वार्ता (नवयुग साहित्य मन्दिर, बीकानेर द्वारा प्रकाशित) और विश्ववाणी वर्ष ४ पृष्ठ १२ पर श्री अगरचन्द नाहटा का लेख 'धर्मवीर जगदेव पंवार'

२ देखें सर्ग पंचम श्लोक ७६-७

उदयादित्य परमार के पुत्र जगद्देव परमार का अस्तित्व सम्भव है।[3] यह भी असम्भव नहीं है कि कुछ समय तक जगद्देव गुजरात में ठहरा हो। उनके उत्तरकालीन वैमनस्य की ध्वनि भी हमें जयनद के शिलालेख में मिलती है। किन्तु बाकी सब कपोलकल्पना मात्र है। इतिहास से हमें जगद्देव के रणधवल नाम या विरुद वाले किसी भाई का पता नहीं चलता। न हम यह मान सकते हैं कि अपने पिता के राज्यकाल में ही जगद्देव ने जयसिंह सिद्धराज के दरबार में आश्रय लिया क्योंकि जयसिंह के सिंहासनासीन होने से कई वर्ष पूर्व ही जगद्देव के पिता उदयादित्य का देहान्त हो चुका था। यह भी झूठ है कि उदयादित्य की मृत्यु के बाद जगद्देव मालवे की गद्दी पर बैठा उसके बावन वर्ष राज्य करने का प्रश्न तो दूर ही रहा। उदयादित्य के वास्तविक उत्तराधिकारी जगद्देव के बड़े भाई लक्ष्मदेव और नरवर्मा थे। इनमें लक्ष्मदेव जगद्देव के समान ही वीर और कीर्तिशाली था।[4]

८ जगद्देव परमार की वास्तविक जीवनी के मुख्य आधार निम्नलिखित हैं —

(१) जगद्देव के समय का शक सं १ ३४ (ई सं० ११११२) का डोंगरगाव का शिलालेख

---

३ श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर ने न जाने इस भ्रम-धारणा को क्यों उचित माना है (शिलालेख नं २८४ पर टिप्पणी लिस्ट ऑफ दी इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ नार्दर्न इण्डिया)

४ लक्ष्मदेव के लिये नरवर्मा का वि संवत् ११६१ का शिलालेख पढ़ें।

(२) जगदेव का जयनद का शिलालेख

(३) अमरुकशतक पर अर्जुनवर्मा की रसिकसञ्जीवनी नाम की टीका में जगद्देव का उल्लेख

(४) होयसल राज्य के कई शिलालेखों में जगद्देव के आक्रमण का वर्णन

(५) भोजवर्मा का बेलाव शिलालेख

(६) प्रबन्धचिन्तामणि

५. जगद्देव के आरम्भिक जीवन का सब से अच्छा वर्णन डोंगरगांव के शिलालेख में है। इसमें लिखा है कि भोज के भाई राजा उदयादित्य के अनेक पुत्र थे। किन्तु अपने मनोनुकूल पुत्र की इच्छा से उसने भगवान् शिव की आराधना की। इसके फलस्वरूप उसके जगद्देव नाम का पुत्र हुआ। जब उदयादित्य स्वर्गस्थ हुआ तो राज्य जगद्देव के प्राय: हस्तगत था। लक्ष्मी स्वयं उसे अपना पति चुन रही थी। किन्तु बड़े भाई से पूर्व विवाह करने से मनुष्य को परिवित्ति दोष लगता है; (मानो) इसी भय से उसने राज्य बड़े भाई को सौंप दिया।[१]

६ इस वर्णन से अनुमित किया जा सकता है कि जगद्देव उदयादित्य का कनिष्ठ पुत्र था। पिता का बड़ा लाडला भी रहा होगा। भाई लक्ष्मदेव के राज्यकाल में सम्भवत: वह मालवे में ठहरा किन्तु नरवर्मा के सिंहासनासीन होने पर उसने मालवा

---

१ एपिग्राफिया इंडिका भाग २६ पृष्ठ १८२ श्लोक ७–८

होगा[६]। प्रबन्धकोश उसे मालवे से गुजरात पहुँचाती है। किन्तु डोंगरग्राम के शिलालेख में लिखा है कि उसने कुन्तलेन्द्र के यहाँ जाकर नौकरी की। कुन्तलेन्द्र उससे कहता 'तुम मेरे पुत्रों में सर्वप्रथम हो तुम मेरे राज्य के स्वामी हो मेरी दक्षिण भुजा हो तुम मूर्तिमान् मेरी सब दिशाओं में जय हो तुम मेरी आत्मा ही हो"[७]। इस स्पष्ट उल्लेख की दन्तकथाओं से कुछ संगति मेरुतुङ्गरचित प्रबन्धचिन्तामणि के आधार पर की जा सकती है। उसने जो कुछ जगद्देव के विषय में लिखा है वह इतना रोचक है कि उसे उद्धृत करने की उत्कट इच्छा का मैं संवरण नहीं कर सकता। यह उद्धरण जगद्देव के जीवन पर ही प्रकाश नहीं डालता वह इन कथाओं के खण्डन के लिये भी पर्याप्त है, जो जगद्देव को सिद्धराज जयसिंह का भृत्य बनाती हैं। कल्पक लोग किस प्रकार से राजाओं के नामों को बदलते हैं—इसका भी यह उद्धरण अच्छा उदाहरण है। कुन्तलेन्द्र वीरविक्रमादित्य षष्ठ से राजस्थानियों और गुजरात वालों का क्या सम्बन्ध? वे

६ नामसाम्य से नरवर्मदेव जगद्देव का सहोदर भाई प्रतीत होता है। दोनों में शायद पर्याप्त प्रेमभाव रहा हो। प्रबन्ध चिन्तामणि के अनुसार यशोवर्मा सिद्धराज जयसिंह से पराजित होने के बाद कुन्तलदेश में गया। सिद्धराज सन् १०९४ में गद्दी पर बैठा और इसी समय के आसपास नरवर्मदेव की मृत्यु हुई। इससे भी यही अनुमान होता है कि नरवर्मदेव की मृत्यु के बाद ही उसने मालवा छोड़ा। नरवर्मा से उसका विरोध कदापि न रहा होगा।

७ एपिग्राफिया इण्डिका खण्ड २१ पृष्ठ १८१ श्लोक ६

तो जानते थे बर्बरक जिष्णु जयसिंह सिद्धराज को जिसके यहाँ पचास महीने सम्भवतः जगद्देव ठहरा। बस यही कुन्तलेन्द्र के स्थान पर गूर्जरेन्द्र का रखने का कारण रहा होगा। चालुक्यराज को चौलुक्यराज समझना भी आसान था। मेरुतुङ्ग के समय तक लोग जगद्देव के विषय में कुछ जानते थे यद्यपि उस समय भी जगद्देव अनेक आश्चर्यमयी कथाओं का आधार बन चुका था। परवर्ती लेखक और कवि इस सामान्य ऐतिहासिक ज्ञान से भी प्रायः शून्य थे।

७ मेरुतुङ्ग का वर्णन निम्नलिखित है[८] —

'जगद्देव नाम का क्षत्रिय त्रिविध वीर था। सिद्धराज द्वारा खूब सम्मानित होने पर भी जब उसे उसके गुणरूपी मन्त्र से वशीभूत शत्रु सर्वक परमर्दी राजा का निमन्त्रण मिला तो वह पृथ्वी-रमणी के केशकलापरूपी कुन्तल देश में चला गया। उसके आगमन की सूचना द्वारपाल ने जब राजा को दी उस समय एक वेश्या नंगी होकर (राजा के सामने) पुष्पचालनक नृत्य कर रही थी। उसी समय उसने लज्जित होकर चादर ओढ़ ली और वहीं बैठ गई। राजा ने आकर जगद्देव को छाती लगाया और उससे मधुरालाप किया। जगद्देव को उसने प्रधान परिधान-दुकूल और लाखों की कीमत के अन्य दो वस्त्र दिये। जगद्देव के महामूल्यवान् आसन पर बैठने पर जब सभा की हलचल समाप्त हुई तो राजा ने इस वेश्या को नाचने का आदेश दिया। तब

८ प्रबन्धचिन्तामणि सिंघी जैन ग्रन्थमाला पृ ११४-११६

उचित बात को कहने में कुशल अत्यन्त चतुर उस वेश्या ने उत्तर दिया—"जगत् का एकमात्र पुरुष जगद्देव आज यहां आया है। उसके सामने बिना वस्त्र के नाचने में मैं लजाती हूँ। स्त्रियों के समुख ही स्त्रियां मन-मानी चेष्टा करती हैं। उसकी अपूर्व प्रशंसा से प्रसन्न होकर जगद्देव ने राजा के दिये हुए दोनों वस्त्र उस दे डाले।

"इसके बाद जब परमर्दी के प्रसाद से जगद्देव को किसी एक देश का आधिपत्य मिला तो उसका यशप्रशस्त उपाध्याय उससे मिलने आया। उसने यह काव्य भेंट किया—

> भल्लत्रवयासिनो भगवत कस्यापि सङ्गीतक—
>
> व्यासक्तस्य च तस्य कुन्तलपते पुण्यानि मन्यामहे।
>
> एकः कामदुघामदुग्ध मरुत सूनो सुबाहुद्वयी
>
> मत्यप्रतिपक्ष-भागव-भवानन्यस्य चिन्तामणिः ॥

'हम दो आदमियों के पुण्य को मानते हैं, एक तो भल्लत्रिय-विधि से बाली को मारने वाले किसी भगवान् (रामचन्द्र) को और दूसरे संगीत में आसक्त कुन्तलपति को। इसमें एक ने तो वायुपुत्र (हनुमान) क कामधनुरूप सुभुजद्वय का दोहन किया और दूसर ने चिन्तामणिस्वरूप शत्रुओं क लिये अत्यन्त परशुराम आसको प्राप्त किया।

'इस काव्य क पारितोषिक में महादानी जगद्देव न आधी लाख (सुद्राए) दी।'

---

१ इसके बाद प्रबन्धचिन्तामणि में १६ श्लोक और दिये हैं और उसके बाद लिखा है "इत्यादीनि भूमिकाव्यानि यथार्थ तानि ज्ञातव्यानि" जिसमे स्पष्ट है कि मेरुतुंग के समय जगदेव-विषयक चर्चा भी उससा पर्याप्त रही होगी।

'राजा श्री परमर्दी की महारानी को जगद्देव अपनी बहन मानता था। एक बार राजा ने सीमान्त के किसी राजा (?) को हराने के लिये जगद्देव को भेजा। जब जगद्देव देवपूजन कर रहा था तो उसने सुना कि अकस्मात से शत्रु सेना ने उसकी सेना को भगा दिया है। किन्तु उसने देवार्चन न छोड़ा। राजा ने चरों के मुख से जगद्देव की इस अभूतपूर्व पराजय की बात जब सुनी तो उसने अपनी महारानी से कहा 'तुम्हारे भाई को संग्राम में वीरता का अहङ्कार है, किन्तु जब शत्रुओं ने उस पर आक्रमण किया तो यह भाग भी न सका। ऐसी राजा की परिहासोक्ति को सुन कर महारानी अरुणोदय के समय पश्चिम दिशा को देखने लगी। राजा ने जब पूछा कि 'क्या देखती हो' तो उसने उत्तर दिया कि 'सूर्योदय को'। राजा ने कहा "भोली-भाली स्त्री क्या पश्चिम में सूर्योदय कभी हो सकता है ? उसने उत्तर दिया 'पश्चिम में सूर्योदय विधि के विधान के विरुद्ध है। किन्तु इस दुर्घट वस्तु के घटित होने पर भी क्षत्रियदेव जगद्देव की हार नहीं हो सकती। पति-पत्नी इस तरह विवाद कर रहे थे। उधर जगद्देव न देवार्चन के बाद उठ कर पांचसौ सुभटों के साथ शत्रु राजाओं की सेना पर आक्रमण किया और उसे इसी प्रकार आसानी से नष्ट कर डाला जैसे सूर्य अन्धकार को केसरि किशोर हाथियों के समूह को और प्रचण्ड पवन घनघोर घनघटा को कर डालता है।

८. गूर्जरदेशीय राजाओं के वृत्तांत के पूरे जानकार और उनके

यश का अनवरत गान करने वाले आचार्य मेरुतुंग के इस कथन से यह प्रमाणित है कि जगद्देव गुजरदेश में अधिक दिनों तक नहीं ठहरा। शायद उसने सिद्धराज जयसिंह की नौकरी कभी स्वीकार ही न की। सिद्धराज जगद्देव की वीरता से परिचित था। उसने जगद्देव का सम्मान भी किया। किन्तु जगद्देव को कुन्तल देशाधिपति परमर्दी (कल्याणाधिपति चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ) का निमंत्रण मिल चुका था। इसलिए जगद्देव वहीं चला गया। परमर्दी ने 'जगद्देव को किसी देश विशेष का अधिपति बनाया और परमर्दी के दरबार में रहते ही जगद्देव ने अपनी दानवीरता की ख्याति विशेष रूप से प्राप्त की। राजस्थान में जगद्देव और कंकाली की कथा प्रसिद्ध है। कंकाली सिद्धराज के दरबार में पहुँची। जगद्देव को देखते ही उसने अपना मस्तक वस्त्र के अञ्चल से ढक लिया। इस कथा का बीज ऊपर उद्धृत प्रबन्धचिंतामणि की कथा में अनुसन्धेय है। इसी प्रकार जगद्देव विषयक अन्य कथाएँ भी बीज रूप में हमें इतस्ततः मिलती हैं।[१]

९. जगद्देव ने कुन्तलेन्द्र के दरबार में जो ख्याति प्राप्त की उसका डोंगरगाम के शिलालेख ने सामान्यतः इस प्रकार निर्देश किया है[११]—

---

१ उदाहरण के लिये देखें जयचन्द्र के दरबार में प्रच्छन्न रूप में पृथ्वीराज के पहुँचने पर कर्णाटी का व्यवहार। सम्भव है ये दोनों कथाएं किसी पुरानी कथा से ली गई हों।

११ 'एपिग्राफिया इंडिका' भाग २६ पृष्ठ १८३–१८४।

अर्थिप्रत्यर्थिनो यस्मिन् मा (वा) ऐ. स्वर्यौरथ वर्षति ।
सैन्यसैन्यनिधिं मुक्त्वा तेऽशाङ्कमुपासते ॥१०॥
न स देशो न स ग्रामो न स लोको न सा सभा ।
न दन्तक दिनं यत्र जगद्देवो न गीयते ॥११॥

'जगद्देव जब अर्थियों (याचकों) और प्रत्यर्थियों (शत्रुओं) पर सुवर्णों (स्वर्णमुद्राओं) और बाणों की वर्षा करता तो अर्थी सैन्यसमुद्र का और प्रत्यर्थी सैन्यसमुद्र का परित्याग कर निरशङ्क उसकी उपासना करते। न वह देश था न वह ग्राम न वह लोक था और न वह सभा न वह रात्रि थी और न वह दिन जहाँ जगद्देव (के यश) का गान न होता हो।

१ डोंगरगाँव लेख में निर्दिष्ट अर्थियों पर जगद्देव की इस कृपा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। किन्तु प्रत्यर्थियों पर उसके दृढ़ प्रहार भी किसी समय कुछ कम प्रसिद्ध न थे। किसी कवि के शब्दों में जिस प्रकार समुद्र का गाम्भीर्य पृथ्वी का विस्तार आकाश की व्यापकता मेरु की तुङ्गता, विष्णु की महिमा कल्पवृक्ष की उदारता गंगा की पवित्रता और चन्द्रमा का अमृतवर्षण कोई नवीन वस्तु नहीं है उसी तरह जगद्देव की वीरता कुछ नई बात न थी। यह तो स्वभावसिद्ध थी। जगद्देव की विजय तो अनेक रही होंगी। ये कब और किस समय हुई यह पूर्णतया जानने के साधन तो हमारे पास नहीं हैं। किन्तु जगद्देव के सेनापति वाहिमा लोलार्क के बिना तिथि वाले अभिलेख के शिलालेख से हमें इतना अवश्य ज्ञात है कि:—

(१) जगद्देव ने मालवाधीश को बुरी तरह हराया।

(२) उसने चक्रदुर्ग के स्वामी को पराजित कर उसे दण्ड में बहुत से मस्त हाथी देने के लिये विवश किया।

(३) उसके मस्त हाथियों की मार से शत्रुओं की हड्डियों के ढेर के ढेर घोर समुद्र में लग गये। महाराष्ट्राधीश (होयसलराज) को इससे अत्यन्त दुःख हुआ।

(४) उसके धनुष की ध्वनि जयसिंह की विक्रम कथाओं के स्वाध्याय में सम्यापनगजन रूपी विघ्न है।

(५) अन्य नृपति ने इसका आश्रय ग्रहण किया [१२]।

११ जगद्देव के ये वीर-कार्य दो विभागों में विभक्त किये जा सकते हैं। इनमें पहले तीन दक्षिण दिशा से सम्बन्ध रखते हैं, और अन्तिम दो उत्तर भारत से। दक्षिण की विजय उसने कुन्तलेन्द्र के सेनापति के रूप में प्राप्त की होगी। चालुक्यराज विक्रमादित्य षष्ठ साम्राज्याभिलाषी राजा था। उसने समस्त दक्षिणापथ में विजय का डंका बजाकर सन् १०७६ में एक नवीन संवत् चलाया। जगद्देव और विक्रमादित्य एक दूसरे के अनुरूप थे। जगद्देव ने विक्रमादित्य को स्वामी के रूप में स्वीकार किया किन्तु विक्रमादित्य ने उसे अपना पुत्र मान कर।[१३] यही पारस्परिक भावना इन दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध का कारण बनी।

---

१२ वही श्लोक २२ पृ १०-११

१३ टिप्पणी ७ देखें। प्रबन्धचिन्तामणि के उद्धरण से भी विक्रमादित्य की जगद्देव के प्रति आत्मीयता स्पष्ट है।

विक्रमादित्य के जीवन के अन्तिम भाग में जब सामन्त इधर-उधर विद्रोह करने लगे कदम्ब जगदेव पूर्ववत् स्वामिभक्त बना रहा।[१४] उसने अनेक विद्रोही सामन्तों को पराजित किया और स्पष्टतः यह सिद्ध किया कि वह चालुक्य साम्राज्य के शत्रुओं के लिए वास्तव में परशुराम है।[१५]

१९. चाभरेरा कृष्णा और गोदावरी नदियों के बीच में स्थित है। जगदेव के समय इसकी राजधानी वङ्गी थी और इसका शासक कुलोत्तुङ्ग चोल था। इसके राज्यकाल में चोल और वेङ्गी राज्य एक बन गये। विक्रमादित्य ने अपने साले अधिराजेन्द्र को चोल-सिंहासन पर बिठाया। कुलोत्तुङ्ग इसे हटा कर स्वयं चोलवंश का शासक बना और जब विक्रमादित्य ने उस पर आक्रमण किया तो उसने विक्रमादित्य के बड़े भाई चालुक्यराज सोमेश्वर को विक्रमादित्य पर आक्रमण करने के लिये उकसाया। विक्रमादित्य सोमेश्वर को हराकर स्वयं राजा बना और अनेक बार उसने वेंगी पर आक्रमण किये।[१६]

---

१४ 'होयसल वंश' के लेखक विलियम Coelho और श्री कृष्ण स्वामी का कथन इस विषय में पठनीय है। दोनों के मतानुसार विक्रमादित्य का प्रताप पीछे से उतना न रहा जितना राज्यकाल के आरम्भ में था। जगदेव अपने स्वामी का सच्चा सेवक था और उसने अनेक विद्रोही सामन्तों पर आक्रमण किये। हम भी अनेक प्रमाणों के आधार पर इसी परिणाम पर पहुंचे हैं।

१५ देखें प्रबन्धचिन्तामणि में प्रयुक्त उपाधि 'प्रत्यक्ष-मार्तण्ड पराक्रमस्य चिन्तामणि' (पृ १११)

१६ कुलोत्तुङ्ग (राजिग) और विक्रमादित्य के संघर्ष के लिए विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग ६ देखें।

सन् १११८ के लगभग विक्रमादित्य वेंगी पर अधिकार करने में सफल हुआ। सम्भवतः इसी विजय में उसे जगदेव से पूर्ण सहायता मिली होगी।

१३ चक्रदुर्ग वस्तर राज्य का चक्रकोट नाम का स्थान है। उस समय यहां नागवंशियों का अधिकार था। सन् १० ५६ से कुछ पूर्व विक्रमादित्य ने चक्रदुर्ग के राजा को पराजित किया।[१०] जगदेव को फिर उस पर क्यों आक्रमण करना पड़ा यह बताना कठिन है किन्तु इस बार राजा को वृक्ष में बहुत से मस्त हाथी देने पड़े।

१४ द्वार समुद्र का शासक कुमार एरेयंग (सन् १०६२-११०) विक्रमादित्य का सामन्त था। सोमेश्वर के विरुद्ध इसने विक्रमादित्य की सहायता की। मालवे पर आक्रमण कर इसने धारा को जलाया। चालों से इसने गंगवाडी को जीता। इसके तीन पुत्र थे बल्लाल प्रथम विष्णुवर्द्धन और उदयादित्य। बल्लाल ने सन् ११ ८ के आस पास विक्रमादित्य के विरुद्ध विद्रोह किया। जगदेव इस उपद्रव दमन के लिए नियत हुआ। स्वामी की आज्ञा का पालन करने के सिवाय जगदेव का यह कार्य दूसरे कारणों से भी रुचिकर रहा होगा। एरेयंग ने धारा को लूटा था। जगद्देव परमार की राजधानी पर आक्रमण कर इसका बदला क्यों न ले? जयन्तद के शिलालेख में जगद्देव की विजय का उल्लेख है। उसके हाथियों ने द्वारसमुद्र में शत्रुओं की हड्डियों

---

१० देखें विक्रमाङ्कदेवचरित सर्ग चतुर्थ श्लोक १

के ढेर के ढेर लगा दिये। किन्तु होयसल शिलालेखों में धोर समुद्र की विजय जगद्देव की नहीं अपितु बल्लाल प्रथम की मानी गई है। सन् ११०६ के एक शिलालेख में लिखा है बल्लाल ने युद्ध में अपने पर आक्रमण करने वाली सेना को ऐसा पीछे हटाया कि *मालवाधीश जगद्देव* (जिसके मस्त हाथी को उसने पिचकवा दिया था) का छत्र 'धन्य है, घुड़सवार धन्य है।" इसका उत्तर बल्लाल ने दिया "मैं केवल घुड़सवार ही नहीं मैं वीर बहादुर हूँ"[१८] और शत्रु संहार द्वारा उसने जगत् को चकित कर दिया। इसी तरह श्रवण बेलगोल के सन् १०५६ के शिला लेख में लिखा है "चक्री (विक्रमादित्य) द्वारा प्रेषित *मालवराज* जगद्देव के सैन्य रूप समुद्र को 'विष्णु (विष्णुवर्द्धन) सहसा पी गया।[१९] सन् ११११ १११७ और ११६४ के शिलालेखों में इसी प्रकार बल्लाल और विष्णुवर्द्धन की विजय का उल्लेख है।[२] सन् १११७ के लेख में जो इन सब से प्राचीन है, विष्णुवर्द्धन और बल्लाल की विजय का वर्णन इस प्रकार से है— "घोर समुद्र में उन्होंने जगद्देव की सैन्य को पराजित किया

१८ एपिग्राफिया कर्नाटिका खण्ड ६ तरिकेरे तालुक संख्या ४५। होयसल वंश' के लेखक विलियम कोएल्हो ने इस जगद्देव को डाहल का राजा मानने की भूल की है। प्रोफेसर कोएल्हो ने जगद्देव के लिये प्रयुक्त 'मालवाधीश' शब्द पर ध्यान नहीं दिया।

१९ वही खण्ड २ श्रवणबेलगोल के शिलालेख (नवीनसंस्करण) नं १४६ पृ ६६

२ वही खण्ड ५ Bl No. ५८ Hn No. ११६ Bl No ११९

सिन्दूर के स्थान पर हाथियों के रक्त से उन्होंने विजयश्री को रञ्जित किया और उसकी नायकमणि के साथ-साथ उसके कोष पर अधिकार कर लिया।[२१]

१५. इन परस्पर विरोधी प्रमाणों के आधार पर दोरसमुद्र में जगद्देव की जय या पराजय के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। किन्तु उसके शौर्य के विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। सच्चा शूर वह है जो शत्रु के शौर्य की भी कद्र करे। यह गुण जगद्देव में वर्तमान था।

१६. ऊपर दिये हुए प्रबन्धचिंतामणि के उद्धरण में जिस सीमान्तभूपाल पर जगद्देव के आक्रमण का वर्णन है, वह सम्भवतः यही दोरसमुद्र का राजा मललाल है। प्रबन्धचिंतामणि का पाठ सीमालभूपाल या भीमालभूपाल है, जिसका कुछ खींचतान से सीमांतभूपाल अर्थ किया जा सकता है। वास्तव में 'मलह' होयसल वंश की जाति रही होगी[२२]। जयनद के शिलालेख में दोरसमुद्र के शासक के लिये मलह-पोसीरा यानि मलह का राजा शब्द प्रयुक्त हुआ है। प्रबन्धचिन्तामणि की सस्तुत में भी मलहभूपाल का भी मालभूपाल परिवर्तित होना बड़ी बात नहीं है। इस भी मलहभूपाल ने जगद्देव की सेना

---

२१ वही Bl No. 68.

२२ वही 'एपिग्राफिया इण्डिका' खण्ड २२ के विद्वान् सम्पादक का मत है।

को पराजित कर दिया किन्तु अन्त में जगद्देव के निजी शौर्य के कारण विजयश्री उसके हाथ रही। सम्भवतः इसी रूप से हम जयनद के शिलालेख होय्सल शिलालेखों और प्रबन्ध चिन्तामणि के वर्णन की परस्पर संगति बैठा सकते हैं[२१]। विष्णुवर्द्धन का अन्त तक अपने लिये 'महामण्डलेश्वर' पदवी का प्रयुक्त करना उसकी कम से कम आंशिक हार का द्योतक है।

१७ जगद्देव दक्षिण अवश्य चला गया किन्तु वह स्वदेश को न भूला। नरवर्मा के राज्यकाल में मालवे की यशोभूमि पर विपत्ति के बादल मंडराने लगे। अजमेर के स्वामी अर्णोराज ने नरवर्मा को पराजित किया। पश्चिम से सिद्धराज जयसिंह ने मालवे पर अपनी चढ़ाइयां शुरू की। चन्देलों ने भी सम्भवत मालवे की कुछ भूमि पर अधिकार कर लिया। इधर-उधर के अन्य राजा भी मालवे पर आक्रमण करने में न चूके होंगे। जगद्देव किसी ऐसे विपत्तिकाल के समय ही कुछ समय के लिये मालवे आया होगा।

---

२१ विष्णुवर्द्धन सन् १११७ में विक्रमादित्य षष्ठ से मिलने गया। इसी समय सम्भवतः उसने अपनी स्वाधीनता सूचित की होगी। विष्णुवर्द्धन अपने को अन्त तक महामण्डलेश्वर और चालुक्यराज के चरणकमल का निवासी कहता रहा। इससे स्पष्ट है कि या तो जगद्देव ने या विक्रमादित्य के अन्य किसी सामन्त ने विष्णुवर्द्धन को हराया। जयनद के शिलालेख के आधार पर हम यह श्रेय जगद्देव को दे सकते हैं।

बयनद शिलालेख के दसवें श्लोक में जयसिंह की पराजय का निम्नलिखित वर्णन है —

भारभय जयसिंहविक्रमकथा स्वाध्यायस (स) ध्यापन-
ध्यानं यस्यधनुर्ध्व (ध्व) नि नरपते र्व्योम्नान्ति विस्तरिग्' ।
भयाप्यर्बुद पर्व्वतो दरदरी ग्रारुप्त रात्रिदिव-
क्रन्दद्गूर्ज्जरवीरवर्गवनिताबाष्पाम्बु (म्बु) पूरोम्मय ॥

इससे स्पष्ट है जयनद के शिलालेख के उत्कीर्ण होने से पूर्व जगद्देव और जयसिंह परस्पर विरोधी बन चुके थे। जगद्देव के धनुष की टंकार अब जयसिंह की विक्रम कथा के लिये सम्पादन के गर्जन के समान थी। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि जगद्देव और जयसिंह का यह संग्राम कहीं आबू पहाड़ के आस-पास हुआ होगा। उसकी घाटियों व दारों पर रोती हुई गूर्जर वीरों की स्त्रियों के आंसुओं से मानों बाढ़ सी आगई थी।

१८ शिलालेख के सम्पादक श्री धीरेन्द्रचन्द्र गांगुली के मतानुसार इस श्लोक में वर्णित जयसिंह भोज का पुत्र जयसिंह परमार है। यही मत डाक्टर श्री देवदत्त रामकृष्ण भण्डारकर का है। किन्तु श्लोक से स्पष्ट है कि यह जयसिंह वास्तव में गूर्जरराज जयसिंह रहा होगा। परमार जयसिंह का राज्य तो जगद्देव के पिता उदयादित्य के भी गद्दी पर बैठने से पूर्व समाप्त हो चुका था। गूर्जरराज जयसिंह सिद्धराज की प्रबल इच्छा थी कि वह मालवे को हस्तगत करे। आबू भी परमारों के अधिकार में था। यह सम्भव है कि आबू के परमार ने अपने

मालवे के भाइयों का साथ दिया हो और इसी कारण से सिद्धराज जयसिंह को आबू पर आक्रमण करना पड़ा हो। जगद्देव की विजय कुछ समय तक ही परमारों पर आई हुई आफत को टाल सकी। नरवर्मा और शायद जगद्देव की मृत्यु के बाद सन् ११३७ के आस पास जयसिंह ने मालवे पर अधिकार कर लिया। आबू ने भी चौलुक्यों की आधीनता स्वीकार की।

१५. जिस कर्ण राजा ने जगद्देव का आश्रय ग्रहण किया वह कौन था यह भी विवेच्य है ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी के आस-पास ये कर्ण वर्तमान थे, चेदिराज लक्ष्मीकर्ण (लगभग १ ४१ १०७३ ई) उसका पुत्र यश कर्ण (लगभग १०७३-११२५ ई) और गुर्जरराज कर्ण (१०६४-१०६४)। इनमें से चेदिराज लक्ष्मीकर्ण भोज का प्रतिद्वंद्वी था। जगद्देव के युवावस्था में पहुँचने से पूर्व ही सम्भवतः वह मर चुका था। श्री धीरेन्द्रनाथ गांगुली गुर्जरराज कर्ण को जगद्देव का विरोधी मानते हैं। यह असम्भव नहीं है। शायद उदयादित्य के हाथों अपनी पराजय का बदला लेने के लिये उसने मालवे पर आक्रमण किया हो किन्तु सन् १ ६४ के आस-पास तक जगद्देव का बड़ा भाई लक्ष्मदेव मालवे का राजा था। उसने बंगाल, बिहार उड़ीसा आदि आदि अनेक राज्यों पर आक्रमण किया। यदि सन् १ ६४ तक (जो लक्ष्मदेव और कर्ण दोनों ही का सम्भवतः अन्तिम राज्यकाल था) जगद्देव ने चालुक्यराज कर्ण को लक्ष्मदेव के सेनानी के रूप में पराजित किया होता तो ई० स ११०४ के

नरवर्मा के नागपुर-शिलालेख में यह विजय अवश्य उल्लिखित होती। इसलिये क्या यह मानना ठीक न होगा कि यह कर्ण वास्तव में चेदिराज यश:कर्ण है। यश:कर्ण को विक्रमादित्य ने सन् १०८१ ई० से पूर्व हराया। लक्ष्मदेव ने भी त्रिपुरी का विध्वंस इसी राजा को हरा कर किया होगा। जगद्देव इन दोनों में से किसी एक का सेनापति होकर यश:कर्ण पर आक्रमण कर सकता था। किन्तु कुन्तल की तरफ से उसके आक्रमण की सम्भावना कम है। वह विक्रमादित्य का सेनापति और सामन्त था अवश्य किन्तु सन् १०८१ तक न जगद्देव के पिता की मृत्यु ही हुई थी और न जगद्देव ने विदेश के लिये प्रयाण ही किया था। इसलिये अधिक सम्भव यही है कि जगद्देव ने लक्ष्मदेव के सेनानी के रूप में कर्ण को हराया और उसे अपनी शरण में आने के लिये बाध्य किया। मालवा छोड़ने से पूर्व जगद्देव अपने शौर्य के लिये प्रसिद्ध हो चुका था। यह ख्याति सम्भवतः उसे लक्ष्मदेव-कालीन विजयों से मिली होगी।[२४]

२ जगद्देव मालवे का राजा कभी न हुआ। किन्तु जैसा प्रबन्धचिन्तामणिकार ने लिखा है वह विदेश में भी परमर्दी विक्रमादित्य षष्ठ की कृपा से एक देश का अधिपति था। इस देश विशेष का कुछ ज्ञान हम डोंगरगांव और जयनद के शिलालेखों से मिलता है डोंगरगांव बरार के यवतमाल जिले का एक गांव

२४ के० वी० सुब्रह्मण्यम की सम्मति है कि जगद्देव ने सन् १११७ में काकतीय राजा प्रोल द्वितीय को भी पराजित किया। यह ठीक हो तो जगद्देव की ज्ञात विजयों की संख्या और बढ़ जाती है।

है। इसके एक शीर्णशीर्ण मन्दिर के गर्भगृह से जगद्देव का एक शिलालेख मिला है, जिसमें जगद्देव के पूर्वजों की और स्वयं जगद्देव की प्रशस्ति के अतिरिक्त इस बात का भी उल्लेख है कि जगद्देव ने डोंगरग्राम श्रीनिवास नाम के एक विद्वान् ब्राह्मण को दान में दिया। इससे यह स्पष्ट है कि विक्रमादित्य से वणवमाल के आस-पास का प्रदेश जगद्देव को जागीर में प्राप्त हुआ। किसी समय यह प्रदेश परमारों के राज्य के अन्तर्गत था किन्तु सन् १०७० से कुछ पूर्व विक्रमादित्य षष्ठ ने इसे जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। जयनद डोंगरगांव से लगभग ठीक १४ मील पूर्व में है और इस समय यह हैदराबाद राज्य के अंतर्गत है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि जगद्देव की जागीर काफी बड़ी रही होगी। बरार का अधिकांश और हैदराबाद का कुछ उत्तरी भाग इस जागीर के अन्तर्गत था।

२१ जयनद के शिलालेख से हमें इसके अश्वसेना नायक दाहिमा जातीय लोलक का नाम मिलता है। उसका पिता गुणराज उदयादित्य का सेनानी था। कई विद्वानों का अनुमान है कि पूर्वबंगाल के राजा सामलवर्मा की मुख्य रानी मालव्यदेवी जगद्देव परमार की पुत्री थी।

२२. दन्तकथाओं के अनुसार जगद्देव रंग का सांवला होने पर भी अत्यन्त सुन्दर था। इस कथन की परिपुष्टि के लिये परमार राजा अर्जुनवर्मा की रसिकसञ्जीवनी टीका से यह उद्धरण दिया जा सकता है—